असिधारा

विराज-साहित्य

पहला भाग	वसन्त के फूल (कविता)
दूसरा भाग	असिधारा (कथाएं)
तीसरा भाग	वनराज के राज में (वन भ्रमण)
चौथा भाग	हर की पैड़ी (प्रेम काव्य)

विराज-साहित्य—२

असिधारा

[राष्ट्रीय चरित्र निर्माण करने वाली कथाएं]

लेखक
विराज

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क : दिल्ली

प्रथम संस्करण
जनवरी, १९५८

कीमत : तीन रुपये

मुद्रक
बालकृष्ण, एम० ए०
युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल, दिल्ली

भूमिका

इस कहानी संग्रह में मेरी तीन प्रकार की कथाएं संगृहीत हैं। इसी आधार पर इसे तीन खंडों में बांट दिया गया है। परन्तु इन तीनों ही प्रकारों की रचनाओं की गूंज एक ही है; और वह है—यशस्वी, बलिदान और गौरवपूर्ण जीवन का गुणगान !

राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण की आवश्यकता देश के स्वाधीन होने से पहले उतनी तीव्र नहीं थी, जितनी कि अब हो उठी है। मेरे मन में गौरवमय जीवन के जो आदर्श हैं, उन्हीं को इन अलग-अलग प्रकार की कथाओं में अंकित करने का प्रयास मैंने किया है। केवल मनोविनोद के लिए ये कथाएं पाठक के हाथ में नहीं दी जा रहीं।

गौरवपूर्ण और मनुष्योचित जीवन किसी एक देश या जाति की बपौती नहीं है। इसीलिए स्वदेश और विदेश का भेद-भाव बिना किये, जो भी चरित्र मेरे मन को भाये, उन्हें मैंने इस संग्रह में संकलित कर लिया है।

पहले खंड की कथाएं इतिहास पर आधारित हैं; दूसरे की भक्तों द्वारा रचित साहित्य पर; और तीसरे खंड की लगभग अपनी कल्पना द्वारा रचित हैं।

मनोरंजन के अतिरिक्त यदि ये कथाएं पाठकों में वीरत्व, साहस, बलिदान और ईमानदारी की भावनाओं का संचार करने में सफल हों, तभी इनके प्रकाशन से लेखक को कोई सन्तोष होगा।

साहित्य मन्दिर
४/१६ रूपनगर, दिल्ली

—विराज

खण्ड १
यशस्वी जीवन



१. विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त
२. महावीर एकिलिस
३. सेनापति रेग्युलस
४. दृढ़व्रती ब्रूटस
५. आत्मदानी डेमियन
६. वीर बेरी
७. प्रताप और चेतक

१.

विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त

"तेरे बाप ने मेरे बाप को मारा था, तुझे मार कर मैं उसका प्रतिशोध चुकाऊँगा। गिरनार दो बार लूटा गया है। इस बार मैं भी उज्जयिनी में गधों का हल चलवा कर ही जाऊँगा।" क्रोध से, विजय के मद से, और गर्व से भर कर शक सेनापति रुद्रसेन गरज रहा था। पराक्रमादित्य समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त इस विजेता से सन्धि की शर्तें सुनने को उपस्थित था।

हार तो कोई भी सकता है, परन्तु सब कोई सब प्रकार की बातें नहीं सुन सकते। और भारत के स्वर्णयुग के गुप्त सम्राट तो ऐसी अभद्र वाणी सुनने के सबसे कम अभ्यस्त थे। दुर्भाग्य से रामगुप्त उनमें सबसे निकृष्ट था। उसके अतिरिक्त अन्य किसी को ऐसी बातें सुनने का अवसर ही नहीं आया। परन्तु इस समय इस परम भीरु और विलासी सम्राट् का भी सोया हुआ तेज जाग उठा। पराक्रमी वह नहीं था, फिर भी उसने गांधी की सी निर्भयता से कहा: "तुमने 'मार दूंगा'

'मार दूंगा' की क्या रट लगाई है। मारना हो, तो मार दो। मरने से हमें डर नहीं है। पर यदि संधि चर्चा करनी है, तो वह इन धमकियों से नहीं होगी।"

रुद्रसेन चौंक कर क्षण भर चुप रह गया, पर तुरन्त ही चौगुने जोर से चिल्ला कर बोला : "मरने से डर नहीं है, तो भी तुम्हें मरना होगा। तुम्हारी निडरता से मुझे क्या ! इस बार उज्जयिनी को आग लगा कर राख न कर दिया, तो मैं रुद्रदामा का पुत्र रुद्रसेन नहीं।"

उसके स्वर की कठोरता और आँखों की लाली को देख कर रामगुप्त डर गया। जीवन उसे प्रिय था। सन्धि की शर्तों के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं सुनना चाहता था। वह न जाने क्या उत्तर देता, परन्तु प्रधानामात्य ने हस्तक्षेप किया—पराक्रमाङ्क के समय का रोब उनमें ज्यों का त्यों बाकी था। "इन सब बातों के लिए युद्ध का क्षेत्र था क्षत्रप ! जहाँ तुम बैठे हो, वह युद्धक्षेत्र नहीं, राजमहल है। राजमहल में इस प्रकार का गर्जन-तर्जन अशिष्टाचरण है। सन्धि करना चाहते हो, तो सन्धि की शर्तें बताओ; या फिर कहो कि सन्धि नहीं करना चाहते।"

यदि यही बात रामगुप्त ने कही होती, तो संभवतः क्षत्रप बीच में ही चीखने-चिल्लाने लगता, पर प्रधानामात्य के सिंह-गंभीर स्वर ने उसे अभिभूत कर लिया। किन्तु क्षण भर बाद ही उसका विजेता हृदय अपनी इस अभिभूतता पर क्षुब्ध हो उठा। सन्धि करने को तैयार होकर ही तो वह महल में आया था। पर यह क्या पराजित होकर सन्धि प्रार्थना करने

वालों का व्यवहार है ? विजेता क्षत्रप इस समय जो कुछ चाहता, कर सकता था। विलासी रामगुप्त की पराजित सेना प्रतिरोध में एकदम असमर्थ थी। फिर क्षत्रप ऐसा व्यवहार क्यों सहे ? इस बार वह चिल्लाया नहीं; पर बहुत ही कठोर और दृढ़ निश्चय से भरे स्वर में बोला "मैं शिष्टाचार सीखने यहाँ नहीं आया। और सन्धि की आवश्यकता मुझे नहीं, तुम्हें है। पर जिस तरह तुम चाहते हो, उस तरह की सन्धि मुझे नहीं करनी है। मैं तो अब बदला लूँगा; पूरा बदला। नगर को जला कर, महलों को उजाड़ कर और तेरे रक्त से अपने पिता का तर्पण करके…" बोलते-बोलते बर्बर शकों का उन्मत्त क्षत्रप रुक गया।

एक द्वार से रेशम के पर्दे को हटा कर गुप्त कुल की शरीरधारिणी लक्ष्मी के समान ध्रुवस्वामिनी ने प्रवेश किया। रामगुप्त की यह प्रधानमहिषी अपने अनुपम लावण्य और अद्भुत तेजस्विता के कारण कुछ ऐसी दिखाई पड़ रही थी कि क्षत्रप रुद्रसेन के मुँह की बात मुँह में ही रह गई। और जब उसके मुँह से बात निकली तो कुछ और ही निकली: "पर यदि तू इस सुन्दरी को मुझे सौंप दे, तो मैं तेरा राज्य, तेरी उज्जयिनी और स्वयं तुझे ज्यों का त्यों छोड़ कर वापस लौट जाऊँगा। किसी को भी कुछ भी नहीं कहूँगा।"

बर्बर शक से इसके अतिरिक्त और क्या आशा की जा सकती है ? पर गुप्तसम्राट् के महल में बैठ कर समुद्रगुप्त की पुत्रवधू को इस प्रकार माँगने का साहस ! समुद्रगुप्त ! जिसका नाम सुनकर शत्रुओं की पत्नियों के दांये नेत्र फड़कने लग

जाते थे। उसी समुद्रगुप्त के पुत्र और पुत्रवधू का ऐसा अपमान ! कितनी ही आँखों में लुहार की सी भट्टियाँ जल उठीं। कितनी ही बांहों में उन्मत्त खून भर उठा; कुछ म्यानों में तलवारें भी खड़कीं; पर आदेश की अपेक्षा से सबके नेत्र उसकी ओर उठ गये, जिसके सिर पर मुकुट था। पर रामगुप्त की आँखों में संतोष और शान्ति की शीतलता थी। उसके होठों पर की मुस्कान जैसे कह रही थी—'अरे, यह संकट इतनी आसानी से टल गया !'

लज्जा से, आत्मग्लानि से और अपमान के क्षोभ से साम्राज्य के सभी पदाधिकारियों के मुख विवर्ण और नेत्र गीले हो गये। आत्म-सम्मान और वंश-गौरव को तिलांजलि देकर राज्य के लोभ और प्राणों के भय से रामगुप्त ने क्षत्रप रुद्रसेन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। समुद्रगुप्त का अयोग्य उत्तराधिकारी पल भर में साम्राज्य के सब लोगों की दृष्टि में सिंहासन से नीचे गिर गया।

जिन लोगों ने ग्लानि और क्षोभ से रामगुप्त का पतन देखा था, उनमें उसका छोटा भाई चन्द्रगुप्त भी था। उसमें अपने तेजस्वी पिता के सभी सद्गुण विद्यमान थे। अपमान को न सह सकने के कारण उसका मुखमंडल तमतमा उठा था; परन्तु उसके प्रत्युत्पन्नमति मस्तिष्क ने उसे अपना रोष संयत रखने की ही सलाह दी। बिना पूरी सज्जा के काम में हाथ डाल कर उसे बिगाड़ देने वाला आदमी वह नहीं था। रामगुप्त की ओर से निराश लोगों की दृष्टि जब चन्द्रगुप्त के मुख पर पड़ी, तो यद्यपि उन्हें वहाँ अन्धकार तो दिखाई नहीं

दिया, पर प्रकाश भी नहीं दीख पड़ा। समुद्रगुप्त को याद करके लोगों के हृदय हाहाकार कर उठे।

× × ×

क्षत्रप रुद्रसेन उज्जयिनी के बाहर अपने सैन्य शिविर में बहुत ही उत्सुक और अधीर था। गुप्तों के राजमहल से शिविकाओं की पंक्तियाँ शिविर में आ रही थीं। ध्रुवस्वामिनी अपनी पांच सौ अनुचरियों के साथ रुद्रसेन के पास आयेगी, यही निश्चय हुआ था। विजय और वासना के आनन्द से रुद्रसेन जैसे हवा में उड़ रहा था। तभी एक परिचारिका ने आकर सूचना दी कि रानी की पालकी आ पहुँची है। 'आखिर अपने बाप के हत्यारे की पुत्रवधू को आज मैंने अपने शिविर में मंगा ही लिया', उसने सोचा; और उसे लगा कि जैसे इस कार्य द्वारा उसने रुद्रदामा को समुद्रगुप्त पर विजय प्राप्त करा दी हो। आनन्द की कल्पना से उसके रोम पुलकित हो उठे। उस रूपयौवनशालिनी सम्राज्ञी के आलिंगन को आतुर वह निर्दिष्ट भवन में पहुँचा।

"मंत्रणागृह में बिना अवगुण्ठन आने वाली तेजस्विनी सुन्दरी इस समय अवगुण्ठन क्यों किये हुए है?" शक क्षत्रप को विस्मय हुआ। पर ऐसे काल में लज्जा अत्यन्त स्वाभाविक है, यह सोचकर वह प्रेम-प्रार्थना करने के लिए पास जाकर उसका अवगुण्ठन हटाने लगा।

जैसे वर्षा की अन्धेरी रात में पैर के समीप नाग की फुफकार सुन कर पथिक चौंकता है, या सैरिन्ध्री के बदले महाबली भीम को पाकर जैसे कीचक चौंका था, वैसे ही अवगुण्ठन

हटाने पर क्षत्रप रुद्रसेन चौंका। ध्रुवस्वामिनी के स्थान पर केसरी के समान सुन्दर और भयंकर एक युवक बैठा था—चन्द्रगुप्त। पल भर में ही क्षत्रप के मस्तिष्क में एक के बाद एक, बीसियों विचार दौड़ गये। वह पल बहुत छोटा था; और उसके बीतते न बीतते चन्द्रगुप्त तलवार लेकर रुद्रसेन पर टूट पड़ा। निहत्था रुद्रसेन देखते-देखते धराशायी हो गया। गुप्त-कुल की लक्ष्मी का अपमान करने वाले के सिर में चन्द्रगुप्त ने गिन कर तीन ठोकरें लगाईं और उसके बाद अपना विजय का शंख बजा दिया। उस शंख की ध्वनि सुनते ही रानी की पांच सौ परिचारिकाएं जैसे जादू से जीवन्मुक्त सैनिकों में परि-वर्तित हो गईं। घोर युद्ध के पश्चात् शक पूर्णतया परास्त हुए।

परन्तु अभी तक सम्राट् रामगुप्त था। ध्रुवस्वामिनी अपने पति की नीचता से विरक्त और चन्द्रगुप्त की वीरता पर मुग्ध हो गई थी। शक सेनापति को अपनी पत्नी सौंप देने वाला रामगुप्त इसे नहीं सह सकता था। पर उस जैसे अपुरुष के लिए मृत्यु के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। यह उसका सौभाग्य था कि वह चन्द्रगुप्त के हाथ से मरा। उसके लिए किसी ने आँसू नहीं बहाये।

राजसिंहासन पर बैठ कर चन्द्रगुप्त ने पराक्रमादित्य समुद्र-गुप्त की सेनाओं को फिर से संगठित किया। एक के बाद एक राज्य उसकी ध्वजा के नीचे आते गये। अपने पिता की भाँति उसने भी विक्रमादित्य उपाधि धारण की। उसकी व्यक्तिगत वीरता, जिसने हारी हुई बाजी को विजय अभियान में बदल

दिया था, आगे के युद्धों में खूब काम आई। वीरता के अतिरिक्त उसे विद्या का व्यसन था और वह कलाओं का उत्कृष्ट पारखी था। उसकी तुलना के लिए हमें संसार के इतिहास में केवल एक नाम मिलता है---जूलियस सीज़र।

२.

महावीर एकिलिस

जिस प्रकार महाभारत की १८ अक्षौहिणी सेना में अपूर्व तेजस्वी योद्धा कर्ण था, उसी प्रकार अनुपम सुन्दरी हैलन के उद्धार के लिए ट्राय नगर के चारों ओर एकत्रित हुई यूनानी योद्धाओं की सेना में एकिलिस था। बल, पराक्रम तथा साहस में सारे यूनानी शिविर में एकिलिस के समान कोई न था।

ट्राय का राजकुमार राजा मैनेलास की पत्नी हैलन का अपहरण करके ट्राय ले आया था। ट्राय के राजा और निवासियों ने उसकी निन्दा नहीं की, उल्टे उसका उत्साह ही बढ़ाया। इससे विक्षुब्ध होकर मैनेलास ने यूनानी सामन्तों से सहायता की मांग की, जो उसे उत्साहपूर्वक दी गई। यूनानी राजकुमार और योद्धा ट्राय नगर पर प्रलय-मेघों की भांति घिर आये। सात वर्ष तक युद्ध जारी रहा। अन्त में ट्राय का पतन हुआ। राजा और अनेक राजकुमार मारे गये। सुन्दरी हैलन फिर मैनेलास को सौंप दी गई। इसी कथा का वर्णन महाकवि होमर ने अपने महाकाव्य इलियड में किया है। 'इलियम' ट्राय का

यूनानी नाम है। तत्सम्बन्धी होने के कारण काव्य का नाम 'इलियड' पड़ गया।

पराक्रम तथा शौर्य में एकिलिस के अधिक होने पर भी आयु तथा अनुभव की अधिकता के कारण आगामेनन को प्रधान सेनापति बनाया गया। उनकी आज्ञा सबके लिए मान्य घोषित की गई। और इस प्रकार युद्ध सन्तोषजनक रूप में चलने लगा। ट्रायवासी नगर को दुर्ग बना कर उसमें डटे हुए थे। वीरता में भी वे किसी प्रकार कम न थे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यूनानी लोग प्रायः सभी बातों में उनसे बढ़े-चढ़े थे।

एक बार यूनानियों ने हल्ला बोला और शहर में से बहुत से लूट के माल के अतिरिक्त बहुत-सी लड़कियों को भी पकड़ लाये। इनमें से एक लड़की को एकिलिस ने अपनी दासी के रूप में चुन लिया। बाद में प्रधान सेनापति आगामेनन ने भी उसी लड़की को अपनी दासी बनाने की इच्छा प्रकट की और एकिलिस को आज्ञा दी कि वह उस लड़की को उसके शिविर में भेज दे। एकिलिस ने इस आज्ञा को अनुचित और बुरा माना। फिर भी एक अनुशासित सैनिक की भांति उसने आज्ञा का पालन किया। किन्तु उसके साथ ही उसने अपने आप को उस अनुशासन की अधीनता से मुक्त कर लिया, जिसे वह अन्याय्य समझता था; और उसने घोषणा कर दी कि जब तक आगामेनन सेनापति है, तब तक मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा और युद्ध में कोई भाग नहीं लूंगा।

इससे यूनानी शिविर में बड़ी खलबली मची। उनका सर्व-

श्रेष्ठ योद्धा इस प्रकार युद्ध से विरत हो जाये, यह किसी को भला नहीं लगा। परन्तु फिर भी आगामेनन को सेनापतित्व से हटाने का प्रश्न ही नहीं उठा। वही सेनापति बने रहे। एकिलिस युद्ध से विरत रहा। युद्ध यथापूर्व चलता रहा। पर अब उसमें पहले की सी तीव्रता और उत्साह न रहा।

ट्राय का युवराज हैक्टर ट्राय की सेना का सर्वोत्तम रत्न था। एकिलिस के युद्धक्षेत्र से हट जाने के बाद उसने अपना प्रचंड पराक्रम दिखाना प्रारम्भ किया; ऐसा कि एक बार तो समस्त यूनानी वीर विचलित हो उठे। यूनानियों की सेना में उलीसस जैसे बुद्धिमान और प्रत्युत्पन्नमति लोग भी थे। उन्होंने विचार किया; और अन्त में एकिलिस के अत्यन्त प्रिय और घनिष्ठ मित्र पेंट्रोक्लस को हैक्टर के विरुद्ध युद्ध में भेजा गया। पैट्रोक्लस वीर था, परन्तु हैक्टर के साथ उसका मुकाबला न था। फिर भी वह अपने साहस के जोर पर हैक्टर से लड़ने गया और वीरतापूर्वक लड़ कर वीरगति को प्राप्त हुआ।

पैंट्रोक्लस एकिलिस का सच्चा मित्र था और एकिलिस उसे कितना स्नेह करता था, यह इसी बात से स्पष्ट है कि उसकी मृत्यु का समाचार सुनते ही वह आपे से बाहर हो गया। उसे यह भी याद न रहा कि वह रुष्ट होकर युद्ध से विरत हुआ है। उसे अपनी आँखों के आगे पैंट्रोक्लस के मृत शरीर और अपने मन में प्रतिहिंसा की भीषण आग के अति-रिक्त और सब कुछ सूझना बन्द हो गया। जैसे अभिमन्यु के मारे जाने पर अर्जुन ने जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा की थी, वैसे ही एकिलिस ने भी प्रतिज्ञा की कि जब तक पैंट्रोक्लस के हत्यारे

हैक्टर का वध न कर लूंगा, तब तक चैन से न बैठूंगा। पैट्रोक्लस की मृत्यु का दुःख होते हुए भी एकिलिस की इस प्रतिज्ञा से यूनानी शिविर में प्रसन्नता की एक लहर-सी दौड़ गई। यही तो वे चाहते थे। इसी के लिए तो पैट्रोक्लस को बलि बनाया गया था।

प्रतिज्ञा बहुत भयंकर थी, इसका पता तब चला, जब सांझ को एकिलिस की देवमाता थेटिस अपने पुत्र के पास आई। उन्होंने कहा : "पुत्र एकिलिस, हैक्टर को मारने का विचार छोड़ दो। इसलिए नहीं कि हैक्टर को मारना तुम्हारे लिए कठिन है, बल्कि इसलिए, क्योंकि हैक्टर को मारने के बाद तुम चौबीस घंटे भी जीवित नहीं रह सकोगे। भाग्य का यही विधान है।"

मित्र की हत्या का प्रतिशोध तो लिया जा सकता है, पर उसका मूल्य बहुत भारी चुकाना पड़ेगा! क्षण भर के लिए सारा सुन्दर संसार एकिलिस की आँखों के आगे घूम गया। परन्तु अगले क्षण स्थिर होकर उसने उत्तर दिया : "मां, अपना जीवन किसे प्यारा नहीं होता! पर जीवन से अधिक प्यारी चीजें हैं औचित्य और सम्मान। जो करना हो उचित है, उसके करने में यदि जीवन जाता हो, तो कल नहीं, आज चला जाये। प्राणभय से मित्र की हत्या का प्रतिशोध लेने से रुक जाने वाला, मां, तुम्हारा पुत्र नहीं है। और मां! सोचो तो; यदि मैं एकिलिस, जो तुम्हारे आशीर्वाद से इस शिविर के सर्वोत्तम योद्धाओं में से एक समझा जाता हूँ, अपने मित्र की हत्या की ओर से आँखें मूंद कर यों ही पड़ा रहूँ, तो मेरे अपने हृदय की

ग्लानि और विक्षोभ की बात छोड़ भी दो, तो भी मेरे साथी और प्रतिपक्षी ट्राय के योद्धा क्या कहेंगे ? क्या वे सब घृणा-पूर्वक नहीं कहेंगे : 'क्या इसी एकिलिस की हम इतनी बड़ाई सुनते थे ? यदि वह वीर है तो अपने मित्र की हत्या का बदला क्यों नहीं लेता ? अवश्य ही वह वीर नहीं है, या फिर स्नेही मित्र नहीं है ।' मां, क्या मैं यह सब सुन सकूंगा ? मित्र की हत्या के प्रतिशोध का मूल्य जीवन बहुत अधिक है। पर अपने जीवित रहने का मूल्य यह आजीवन असन्तोष, आत्मग्लानि और असम्मान यह उससे भी अधिक है। मां, जीवन मुझे इतना प्रिय नहीं है । हैक्टर को मारे बिना मैं चैन से नहीं बैठ सकता, मृत्यु चाहे फिर जब भी हो ।"

थेटिस मां थी । उसकी आँखें डबडबा आईं । वे आँसू केवल विषाद के नहीं थे। उसने बस इतना कहा : "पुत्र, मैं तो तुम्हें 'यशस्वी होवो' का ही आशीर्वाद देती रही हूँ। 'चिरजीवी होवो' की बात मेरे अन्तः करण में अवश्य रहती थी, पर उसे मैंने होठों से बाहर कभी नहीं निकाला है । जो कुछ तुम करो, देवता उसमें सहायक हों ।"

थेटिस चली गई और एकिलिस उत्सुकता से, अधीरता से अगले प्रभात की प्रतीक्षा करने लगा ।

नित्य की भांति निःशंक हैक्टर फिर ट्राय से बाहर निकला । सिवाय एकिलिस के उसे और किसी से भय नहीं था । परन्तु जब वह शहर से भली प्रकार बाहर आगया, तो एकिलिस अपनी पूरी रणसज्जा से समरांगण में उतरा और हैक्टर का पीछे शहर में लौटने का मार्ग रोक कर खड़ा हो

गया। एकिलिस फिर युद्ध में उतरा है, यह सुनते ही ट्राय के दुर्ग के द्वार धड़ाधड़ बन्द हो गये। युवराज हैक्टर एकिलिस से सुलझने को बाहर ही रह गया। वापस नगर में लौटने का उसे अवसर ही नहीं मिला। तब एकिलिस ने उसका पीछा किया।

बचने के लिए हैक्टर रथ पर भागा। शायद कोई द्वार खुला मिल जाये, इस आशा में हैक्टर ने ट्राय की प्राचीर के चारों ओर सात चक्कर लगाये। पर द्वार खुला नहीं मिला। काल की भांति एकिलिस उसका पीछा कर रहा था। अन्त में संक्षिप्त, किन्तु भयंकर युद्ध में एकिलिस ने ट्राय के सर्वोत्तम वीर हैक्टर को मार डाला और अपने मित्र की हत्या का बदला लिया।

अगले दिन एकिलिस भी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।

३.

सेनापति रेग्युलस

रोम और कार्थेज का युद्ध चल रहा था। अपनी सभ्यता पर, शिक्षा पर, और संस्कृति पर अभिमान करने वाला रोम कार्थेज के मुकाबले में कमजोर सिद्ध हो रहा था। अशिक्षित और असभ्य कहे जाने वाले कार्थेजवासी रणकौशल में रोमनों को परास्त कर रहे थे। तभी एक घटना ऐसी हुई कि जिसने पशुबल और रणकौशल के ऊपर सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी और उसी ने मानों यह घोषणा भी कर दी कि विजय अन्त में संस्कृति की ही होगी।

निरन्तर पराजयों से चिन्तित होकर रोमनों ने कार्थेज-वासियों के दमन के लिए अपने अनुभवी और साहसी सेनापति रेग्युलस को भेजा।

रेग्युलस अत्यन्त पराक्रमी व कुशल योद्धा था। परन्तु पराक्रम तथा कौशल की भी एक सीमा होती है। रेग्युलस की सेना विरोधियों की तुलना में बहुत छोटी थी; विरोधियों के हौसले भी बढ़े हुए थे। उन्होंने रोमन सेना पर प्रचण्ड आक्र-

मरण किया। रेग्युलस और उसके सिपाहियों ने बड़ा शानदार मुकाबला किया; परन्तु लाभ कुछ न हुआ। बहुत से सैनिक मारे गये और बहुत से कैदी बना लिये गये। रेग्युलस भी कैदी बना लिया गया।

रेग्युलस कैदी भले ही बन गया, परन्तु युद्ध समाप्त नहीं हुआ। रोम से और अच्छे-अच्छे सेनापति सेनाओं की कमान संभालने के लिए भेज दिये गये। लड़ाई का कोई भरोसा थोड़े ही है; आज जयलक्ष्मी एक ओर माला बढ़ाये दीखती है और कल किसी दूसरे के ही गले में उसे डाल देती है। अब की बार रोमनों का दाँव लगा और उन्होंने कार्थेज वालों के कई प्रमुखतम सेनापति बन्दी बना लिये।

कार्थेज के पास वीर सैनिकों की कमी न थी; परन्तु सेनापति उनके पास गिने-चुने ही थे; अतः उन्होंने रोमनों से अनुरोध किया कि दोनों पक्ष अपने-अपने बन्दियों का विनिमय कर लें।

रोमनों को रेग्युलस की चिन्ता थी; उन्होंने कहा : "तुम्हें रेग्युलस को भी वापस करना होगा। यदि यह स्वीकार हो, तो हम उतने बन्दी तुम्हारे वापस कर देंगे, जितने तुम हमारे हमें दोगे।"

कार्थेजवासियों ने इसे स्वीकार कर लिया। नौका में चढ़ा कर रेग्युलस को रोम ले जाया गया।

× × ×

"बधाई हो रेग्युलस! बधाई हो! जो तुम इन बर्बरों के क्रूर पंजों में से जीवित लौट आये!" मित्रों ने रेग्युलस का

आलिङ्गन करते हुए कहा ।

रेग्युलस ने आलिङ्गन करते हुए ही उत्तर दिया : "बधाई तुम सबको और रोम को है, जिनकी वीरता के कारण यह सब संभव हुआ । रोम विजयी हो ।" परन्तु उसके स्वर में वैसा चचल उल्लास न था; किसी गंभीर भार से जैसे उसकी वाणी दबी जा रही थी ।

"जय-पराजय तो लगी ही रहती है" कुछ दबे कण्ठों में खुसफुसाहट हुई "पर रेग्युलस सा वीर सेनापति जीवित लौट आया, यह सचमुच ही प्रसन्नता की बात है !"

रेग्युलस भी उसी ओर मुड़ा और स्नेह से डांटते हुए बोला : "कौन कहता है, जय पराजय तुच्छ वस्तु है ? बड़े-बड़े वीर प्राणों को हथेली पर रखकर क्या तुच्छ वस्तु के लिए रणभूमि में जाते हैं ? वीर योद्धा क्या जीवित लौटने के लिए रणताण्डव में सम्मिलित होते हैं ? मित्रो, जयश्री ही संसार में सबसे बड़ी वस्तु है । यदि एक व्यक्ति के प्राण देने से राष्ट्र की विजय होती हो, तो वह व्यक्ति, चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, यदि वह वीर है, तो अपने प्राण देने में क्षण भर का भी विलम्ब न करेगा ।"

"हमारे सेनापति हमें लौटाओ; हमने तुम्हारा रेग्युलस तुम्हें लौटा दिया है ।" कार्थेज के योद्धाओं ने कहा ।

"हाँ-हाँ, तुम्हारे सेनापति तुम्हें दिये जायेंगे" शासन-परिषद् के सदस्यों ने कहा ।

"कौन से सेनापति ?" तभी रेग्युलस ने रहस्यपूर्ण और ऊँची आवाज में पूछा ।

"क्यों ? तुम्हारे बदले हमारे सेनापति हमें वापस मिल जायेंगे, यही तो तय हुआ है। अब यहाँ आकर क्या तुम वचन से फिर जाना चाहते हो ?" विस्मय और क्रोध से भरे स्वर में कार्थेजवासियों ने कहा।

"वचन से फिर जाना वीरों का काम नहीं है। तुम मुझे ही वापस ले चलो।" उसके बाद रेग्युलस रोम की शासन-परिषद् के सदस्यों की ओर मुड़ा; "आपसे मेरी यही विनय है कि आप लोग बन्दियों का विनिमय न करें। रोम के पास मेरे जैसे और मुझसे अच्छे अनेक सेनापति हैं। परन्तु कार्थेज के पास केवल वे ही थे, जिन्हें आपने बन्दी बना लिया है। यदि कार्थेज को शीघ्र पराजित करना है, तो यह विनिमय मत कीजिये। मैं वापस कारागार में लौट जाऊँगा !"

सब ओर सन्नाटा खिंच गया। लोग अवाक् रह गये। क्षण भर कोई कुछ बोल न सका। फिर रेग्युलस का एक मित्र बोला : "इस समय कार्थेज में हमारी विजय पर विजय हो रही है। आज नहीं, तो कल हम शत्रु का सिर कुचल ही देंगे। ऐसी दशा में रेग्युलस को मृत्यु के मुख में फेंकना क्रूरता होगी।"

रेग्युलस मुस्कराने लगा; बोला : "प्यारे मित्र, मृत्यु का मुझे भय नहीं है। युद्ध में तो गया ही था; वहाँ भी तो मृत्यु हो सकती थी। अब भी समझ लेना कि रेग्युलस युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया। परन्तु जिस विषधर साँप का फन बड़ी कठिनाई के बाद अब तुम्हारी मुट्ठी में आ गया है, उसे छोड़ने मैं नहीं दूँगा।"

"हमें क्या उत्तर देते हो, जल्दी कहो" असफलता की संभा-

बना और क्रोध से अधीर होते हुए कार्थेजवासियों ने कहा।

"उत्तर क्या है ? यही कि जैसे मुझे लाये हो, वैसे ही वापस ले चलो।" रेग्युलस की वज्र सरीखी वाणी सभा में गूंज उठी। कोई 'हाँ' न कर सका, कोई 'ना' न कर सका।

"तो फिर यहाँ आये ही क्यों थे ?" जलते हुए एक कार्थेज-वासी ने कहा।

रेग्युलस ने उसे उत्तर नहीं दिया; दूसरी ओर मुख करके कहा: "अपनी पितृभूमि रोम, और उसके वीर निवासियों के अन्तिम दर्शन के लिए।"

"तो फिर चलो; अभी लौटो। हम एक क्षण भी व्यर्थ नहीं रुकेंगे। अब भी सोच लो।"

"सोच लिया है; चलो" कहकर रेग्युलस चलने को तैयार हो गया।

तभी उसकी पत्नी अपने छोटे बच्चे के साथ आ उपस्थित हुई। एक-दूसरे को देखा; आँखों-आँखों में कुछ बात भी हुई; परन्तु क्षुब्ध हुए कार्थेजवासी अब क्षण भर भी रुकने को तैयार नहीं थे। बल प्रयोग करके रुका भी जा सकता था; किन्तु वह वचन के विपरीत होता।

रेग्युलस नौका पर चढ़ गया। पत्नी आँखों से आँसू बहाती हुई उसकी ओर देख रही थी। मांझियों ने डांड संभाले। छोटा बच्चा चिल्ला उठा: "बापू !"

रेग्युलस ने आधी कम्पित और आधी स्थिर आवाज में उत्तर दिया: "रोम चिर विजयी हो !"

सबके कलेजे हिल गये। भूमध्य सागर की चंचल लहरें

मानों अपने मृदु 'कल-कल' रव में कहने लगीं : "ऐसी वीर वाणी कभी नहीं सुनी; कहीं नहीं सुनी !"

और विधाता ने रेग्युलस के इन्हीं शब्दों के आगे 'तथास्तु' लिखकर भविष्य की पट्टी पर टाँग दिया ।

और उस महापराक्रमी वीर को लिये वह छोटी-सी नौका छप-छप करती महासमुद्र की छाती पर दौड़ चली*।

* कार्थेज पहुँचकर रेग्युलस की बड़ी क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी गई। परन्तु रोमनों ने उसका और उसके परिवार का यथेष्ट सम्मान किया।

४.

दृढ़व्रती ब्रूटस

मनु महाराज ने कहा है कि पहले जब कोई राजा नहीं था, तब सारे संसार में मात्स्य न्याय प्रचलित था; अर्थात् सबल निर्बल को मनमाने रूप से कष्ट देता था। इस अव्यवस्था से बचने के लिए प्रजा ने एक स्वर से अपना एक राजा चुन लिया। परन्तु राजाओं के बन जाने पर कौन-सा न्याय चला, यह हम अब देखेंगे।

रोम शहर रोमुलस नाम के एक राजा ने बसाया था। उसके बाद क्रमशः पांच राजाओं ने अपने बल और पराक्रम से रोम के ऐश्वर्य की वृद्धि की। परन्तु सातवां राजा इन सबसे उलटा था। उसका नाम था टार्किन। वह इतना अभिमानी था कि लोगों ने उसके नाम के साथ 'अभिमानी' शब्द ठीक उसी प्रकार उपाधि के रूप में जोड़ दिया था, जैसे सिकन्दर के साथ 'महान'।

टार्किन अत्यंत विलासी और लोभी राजा था। शत्रुओं से युद्ध लड़कर अपना राज्य बढ़ाने के स्थान पर उसे धन

बटोरने की चिन्ता अधिक रहती थी। प्रजा के लाभ के लिए अच्छे कानून बनाने की न उसकी इच्छा थी और न उसमें बुद्धि ही थी। जैसे कि इस प्रकार के लोग प्रायः होते हैं, वह बहुत ही संदेही प्रकृति का पुरुष था। जिस व्यक्ति के विषय में उसे तनिक भी बुद्धिमत्ता या कुशलता का संदेह होता, उसे वह किसी न किसी प्रकार अवश्य मरवा देता; क्योंकि वह डरता था कि बुद्धिमान आदमी अवश्य ही किसी दिन उसे हटा कर स्वयं राजा बन बैठेगा। उसके पुत्र उससे भी एक पग आगे थे।

उन्हीं दिनों रोम में ल्यूसियस जूनियस नाम का एक युवक रहता था। उसे लोग 'ब्रूटस' भी कहते थे। 'ब्रूटस' शब्द का अर्थ होता है—जड़मूर्ख। परन्तु वस्तुतः यह व्यक्ति अत्यन्त मेधावी और कुशल था और मूर्ख होने का ढोंग इसलिए रचता था, जिससे टार्किन उस पर किसी प्रकार का संदेह न करे। लाओत्से ने भी लिखा है कि बुद्धिमत्ता और कुशलता इसमें नहीं है कि आदमी बुद्धिमान और कुशल दीख पड़े। वस्तुतः टार्किन के लिए ब्रूटस से अधिक भयंकर व्यक्ति सारे रोम में कोई न था।

किंवदन्ती है कि राजा टार्किन ने ब्रूटस को अपने दो पुत्रों के साथ 'डेल्फी' के मन्दिर में भेजा। लोगों का विश्वास था कि मन्दिर की देवी भविष्य बता देती है। जब वे टार्किन द्वारा बताये गये प्रश्नों को पूछ चुके, तो टार्किन के पुत्रों में से एक ने प्रश्न पूछा : "इसके बाद हम में से कौन राज्य करेगा ?"

"जो अपनी माता का सबसे पहले चुम्बन करेगा", उत्तर मिला।

मन्दिर से बाहर निकलते ही ब्रूटस फिसला और भूमि पर

गिर पड़ा। वस्तुत: वह फिसला इसलिए था, जिससे वह पृथ्वी का चुम्बन कर सके, जो कि सब मनुष्यों की मां है।

× × ×

"रोम के वीर निवासियो, अपनी तलवारें म्यान में से निकाल लो। विद्रोह का झण्डा ऊँचा करो। टार्किन के पाप का घड़ा पूरा भर चुका है।"

लोग विस्मय और आतंक से देख रहे हैं; असम शक्तिशाली टार्किन के विरुद्ध यह विद्रोह-वाणी ब्रूटस के कण्ठ से निकल रही है। इस वाणी का फल कभी अच्छा नहीं होता, यह सब जानते हैं। इस बार भी अच्छा नहीं होगा, यह भी सब समझ रहे हैं; किन्तु नंगी तलवार लिये घोड़े पर सवार ब्रूटस तलवार म्यान में से निकालने की जो बात कह रहा है, उसमें कुछ वैद्युतिक आवेश है; कोई बलवती प्रेरणा है। न चाहते हुए भी, डरते हुए भी लोगों के बाहु तलवार संभालने को मचल उठे हैं।

राजा के अत्याचार से आग सबके हृदय में सुलग रही है, किन्तु भय राख का ढेर बन कर उसे भभकने नहीं दे रहा है। ब्रूटस की वीर वाणी उसी भय की राख को आंधी बन कर उड़ाये दे रही है :

"वीर रोमनो, ल्यूक्रेशिया ने आत्म-हत्या कर ली है! राजा के दुराचारी पुत्र सैक्सटस ने अपने पापी शरीर से उसे अपवित्र कर दिया था। ल्यूक्रेशिया को तुम सब जानते हो। वैसी सुन्दर, बुद्धिमती और पवित्र युवती रोम में और कोई नहीं है। उसने अपने पिता, अपने पति, वीर प्युब्लियस वैलेरियस और मेरे

सामने अपने ऊपर हुए अत्याचार की कथा कह कर अपनी छाती में छुरा मार लिया है ।

"रोम के यशस्वी नागरिको ! क्या तुम और हम ऐसे अत्याचारों को सिर झुका कर सहते रहेंगे ? कभी नहीं । ल्यूक्रेशिया का पवित्र खून हमने अपनी तलवारों की नोंक पर छुआ लिया है और जब तक ये नोंकें अत्याचारियों की छाती के आरपार न हो जायें, तब तक, हमने प्रतिज्ञा की है कि न चैन से बैठेंगे, न चैन से खायेंगे, न चैन से सोयेंगे ।

"उठो रोमवासियो, उठो ! तुम्हारी क्षमाशीलता से लाभ उठाकर ही तो अत्याचारी फल-फूल रहा है । जब तक तुम्हारी आँखों में खून नहीं उतरता, जब तक तुम्हारे हाथों में तलवार नहीं चमकती, तभी तक ल्यूक्रेशियाएं अपमानित होती हैं ।

"उठो, सोये हुए वीरो उठो; तलवारें निकाल कर बढ़ो; और देखो कि टार्किन के अत्याचारों का महल किस प्रकार पल भर में ढह जाता है ! उठो, ल्यूक्रेशिया के अपमान का बदला लो । तलवारें म्यान से बाहर निकाल लो !"

यह विद्रोह का स्वर गली-गली में, घर-घर में गूँज उठा । अत्याचार से दबी हुई जनता मंत्र से मुक्त क्रुद्ध सर्प की भांति फुफकार उठी । रोम का एक-एक व्यक्ति टार्किन के लिए सांप और बिच्छू बन गया ।

अत्याचारी रोम छोड़ कर भाग गया और रोमनों ने उस दिन प्रतिज्ञा की कि हम आगे से रोम में किसी को भी राजा न बनायेंगे । और उन्होंने राजा के स्थान पर दो प्रबन्धक नियुक्त कर दिये ।

ल्यूसियस जूनियस ब्रूटस इनमें से एक था।

× × ×

आखिर षड्यंत्र पकड़ा गया। टार्किन-परिवार फिर अनेक उपायों से रोम की सत्ता हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहा था। षड्यंत्रकारी रंगे हाथ दबोचे गये। परन्तु आश्चर्य !! ब्रूटस के अपने दो जवान पुत्र उनमें सम्मिलित थे।

और न्याय के आसन पर स्वयं ब्रूटस को बैठना पड़ा।

दोनों पुत्र न्यायालय में उपस्थित किये गये। अभियोग पढ़ा गया; पिता के स्वभाव को जानने वाले पुत्र झूठ न बोल सके : "बापू, हम से बड़ी भूल हुई। आज तुम्हारे चरण छूकर शपथ करते हैं कि आगे से ऐसा पाप कभी न करेंगे।" उनके स्वर में सच्चा पश्चात्ताप बोल रहा था।

"भूल आदमी से हो ही जाती है; अगर वह क्षमा मांगे, तो एक बार तो क्षमा कर देना ही उचित है", एक कुलीन भद्रपुरुष धीरे से बोला।

"आखिर रक्त तो ब्रूटस का ही है; जरा-सा यत्न करने से दोनों सुधर जायेंगे।" एक और आवाज हलकी सी सुन पड़ी।

"दण्ड का उद्देश्य सुधार होना चाहिये। और अगर किसी समय दण्ड न देने से ही सुधार होता हो, तो दण्ड न देना ही उचित है।"

"जवान आदमी को मार दिया जाये, यह तो बिलकुल क्रूरता जान पड़ती है!"

परन्तु ब्रूटस पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठा था। जड़भाव से उसने अभियोग सुना; पुत्रों द्वारा दीनतापूर्वक की गई क्षमा-

प्रार्थना सुनी; उच्च कुलीन भद्र पुरुषों की आलोचना और सिफारिश सुनी। और अन्त में वह पत्थर जैसे सजीव हो उठा।

क्षण भर के लिए सारी सभा स्तब्ध हो गई; ऐसा लगा जैसे एक क्षण के लिए संसार की सारी गति रुक गई है। सब एकटक उद्ग्रीव होकर सुनने लगे।

"षड्यंत्र पकड़ा गया; असफल हो गया, तो ये लोग क्षमा मांगते हैं। पर यदि षड्यंत्र सफल हो जाता और टार्किन राजा बन जाता, तो कौन किसको क्षमा करता ? रोम को एक बार अत्याचारी के पंजे से छुड़ाने के लिए जितना रक्त बहाना पड़ा है, उसका ध्यान रखते हुए उसी स्वाधीनता के विरुद्ध षड्यंत्र करने वालों पर दया नहीं की जा सकती। औरों के साथ इन्हें भी प्राण-दण्ड दिया जाये, जिससे भविष्य में ऐसे षड्यंत्रकारी इनके उदाहरण से कुछ शिक्षा लें।"

कह कर ब्रूटस रुका नहीं; तुरन्त उठकर न्यायालय से बाहर चला गया।

जाते-जाते उसके कानों में दो अधीर कण्ठों का स्वर सुन पड़ा—"बापू !"

× × ×

सांझ का अंधेरा अभी बढ़ना प्रारम्भ ही हुआ था कि दोनों जवान बेटों के शव उठाये हुए राज-कर्मचारियों ने ब्रूटस के घर में प्रवेश किया। उस समय ब्रूटस, उसकी पत्नी और उसकी दो युवती कन्याएं; केवल चार ही प्राणी घर में थे।

५.

आत्मदानी डैमियन

बेल्जियम के एक कालिज में दो भाई पादरी बनने की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। बड़े भाई का विचार प्रचारक बन कर दक्षिण के द्वीपों में प्रचार कार्य के लिए जाने का था। जब कभी वह समुद्रपार अपने धर्म के प्रचार और पीड़ितों की सेवा के लिए जाने की बातें करने लगता, तो उसकी आँखें एक अद्भुत आभा से चमकने लगतीं; और उत्साह से वह अपनी हथेलियां मलने लगता।

परन्तु उसके स्वप्न पूरे न हुए। वह बीमार पड़ गया। ज्वर ने उसे जर्जर कर दिया। वह निराशा और उदासी से पीला पड़ गया। एक दिन उसका छोटा भाई उसके बिस्तर के पास आकर बैठा और बोला : "यदि तुम्हारी जगह मैं दक्षिण के द्वीपों में प्रचारार्थ जाऊँ, तो तुम्हें संतोष होगा ?"

बड़ा भाई 'हाँ' या 'ना' कुछ न कह सका, पर उसके रोग से शीर्ण होठों पर मुस्कराहट खेल गई; क्षण भर के लिए उसकी धुंधली आँखें चमक उठीं; उसने असीम स्नेह के साथ

छोटे भाई का हाथ अपने हाथ में लेकर दबाया।

उसी दिन जोसेफ डैमियन ने कालिज के अधिकारियों के सामने दक्षिण के द्वीपों में प्रचारार्थ जाने के लिए प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर दिया।

एक दिन वह पुस्तक लेकर पढ़ने बैठा था। उसी समय कालिज के अधिकारी ने आकर उसे बताया कि उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई है। डैमियन हार्दिक आनंद से उन्मत्त हो उठा और हर्ष के आवेग को न संभाल सकने के कारण कमरे में से निकल कर खेल के मैदान में टहलने चला गया।

"इस का दिमाग कुछ खराब तो नहीं है?" दूसरे विद्यार्थियों ने आपस में कहा।

बात भी ऐसी ही थी! अपने घर-द्वार, माता-पिता, सगे सम्बन्धी और इष्ट-मित्रों को छोड़ कर, सब से बढ़ कर उस देश को छोड़ कर, जहाँ की भाषा, रीति-रिवाज आदि से वह परिचित था, किसी सुदूर अज्ञात अदृष्ट देश में जाकर असभ्य विदेशियों के बीच में जीवन बिताने को उत्कंठित होना कुछ दिमाग खराब होने का सा ही चिह्न दीखता है। हमारे इस संसार में जब कोई व्यक्ति सर्वस्व त्याग कर छुरे की धार के समान तीक्ष्ण बलिपथ पर चल निकलता है, तब समझदार लोग 'पागल हो गया है!' कह कर उसकी ओर दयादृष्टि से देखने लगते हैं, इससे बढ़ कर खेद की बात और कोई नहीं है।

यौवन से नारी का रूप निखर उठता है, यह सत्य है; परन्तु कभी किसी किशोर का रूप भी देखा है? गौर विशाल

मस्तक हो; पीछे की ओर मुड़े हुए केश हों; सपनों और उमंगों से भरे हुए नेत्र हों; ओजस्वी मुखमंडल से उत्साह फूटा पड़ रहा हो; छाती के नीचे समस्त संकटों की अवहेलना करने वाला निर्भीक साहसपूर्ण हृदय हो। यह कोई असाधारण लोकोत्तर वस्तु नहीं है; पर फिर भी ऐसा किशोररूप कहीं-कहीं ही दीख पड़ता है; और जहाँ दीख पड़ता है, वहाँ सौ-सौ सुन्दरियाँ आत्मनिवेदन को उत्सुक हो उठती हैं।

पर ऐसा सुन्दर रूप भी जोसेफ़ डैमियन के किसी काम न आया। उसने उठती जवानी में ही संसार को त्याग दिया। माता-पिता, स्नेही बन्धु-बान्धवों और सांसारिक प्रलोभनों की अपेक्षा उसने एक लोक-विस्मृत प्रचारक बन कर लोक सेवा का व्रत ले लेना ही अधिक पसन्द किया।

नवयौवन के उत्साह से भरा हुआ वह तपस्वी डैमियन समुद्रों को पार कर के दक्षिणी द्वीपों में पहुँचा और तेतीस वर्ष की आयु तक निरालस्य भाव से धर्म-प्रचार और सेवा का कार्य करता रहा।

एक दिन उसने बिशप को कहते सुना : "मोलोकाई में पीड़ित और परित्यक्त कोढ़ियों की सेवा के लिए किसी को भेजना चाहता हूँ; पर कोई जाने को तैयार नहीं होता। उनसे अधिक दुःखी और उनसे अधिक उपेक्षित संसार में कोई नहीं है।"

कोढ़ियों की दुःख-गाथा सुन कर पादरी डैमियन का हृदय रो उठा और उसने कोढ़ियों की सेवा के लिए मोलोकाई जाने की बिशप से अनुमति मांगी। बिशप ने डैमियन के स्वस्थ

और सुन्दर देह की ओर देखा और आँखों के आँसुओं को संभालते हुए अनुमति दे दी। आखिर वे भी तो मनुष्य हैं, जो इस महाभयंकर बीमारी से कष्ट पा रहे हैं। सबसे तिरस्कृत और उपेक्षित होने के कारण सेवा की सबसे अधिक आवश्यकता तो उन्हीं को है। असभ्य और असंस्कृत लोगों की सेवा का कार्य छोड़ कर पादरी डैमियन ने तिरस्कृत और उपेक्षित कोढ़ियों की सेवा का कार्य अपनाया।

कोढ़ से अधिक घृणित और भयंकर बीमारी संसार में कोई नहीं है। जिसे एक बार यह हो जाये, वह कभी ठीक नहीं हो सकता। उसके अंग धीरे-धीरे गल कर गिरने लगते हैं। नाक गल जाती है; ओठ गल जाते हैं; अंगुलियां गल जाती हैं। इतना ही नहीं, यह बीमारी फैलने वाली बीमारी है। दस कोढ़ियों के साथ दस स्वस्थ मनुष्यां यदि रहने लगें, तो उन्हें भी शीघ्र या देर से कोढ़ अवश्य हो जायेगा। इसीलिए गांव या शहर के लोग कोढ़ियों को गांवों या शहरों में नहीं आने देते थे। कोढ़ी लोग अलग इकट्ठे रहते थे; वे पशुओं से भी गन्दा जीवन व्यतीत करते थे। उनके शरीर घृणित घावों से भरे और आत्माएं पाप से दबी हुई थीं। जोसेफ़ डैमियन ने स्वेच्छा से इनकी सेवा का महान् व्रत स्वीकार किया।

जोसेफ़ डैमियन ने इन लोगों में पहुँच कर उन्हें बताया कि परमात्मा तुम्हें भूला नहीं है। वह अब भी तुम्हें प्यार करता है। उसकी आँखों, उसकी मधुर हँसी और उसकी कोमल आवाज़ को देख कर और सुन कर कोढ़ियों को सचमुच ही विश्वास हो चला कि परमात्मा उन्हें प्यार करता है। उन्होंने

अपने जीवन सुधारने प्रारम्भ किये। अपने पापों पर उन्हें लज्जा और पश्चात्ताप होने लगा। पशु से वे मनुष्य बने और डैमियन के मुख की ओर देखते हुए, उसकी आज्ञाओं का पालन करते हुए, वे ईश्वर के भले पुत्र बनने का प्रयत्न करने लगे।

ईश्वर उन्हें प्रेम करता था या नहीं, यह बात तो असंदिग्ध रूप से किसी दिन जानी नहीं जा सकी, पर एक बात निश्चित थी; वह यह कि जोसेफ़ डैमियन उन्हें सचमुच प्यार करता था।

सोलह साल तक यह अद्वितीय, लोकोत्तर आभावाली दीपशिखा निरंतर जलती रही। इसके प्रकाश में कितने ही पतित पावन बन गये। डैमियन ने नरक को स्वर्ग बना दिया।

उसने कोढ़ियों के लिए प्रार्थना मंदिर, निवास भवन, अस्पताल और पुस्तकालय बनवा दिये। वह स्वयं अपने हाथों से कोढ़ियों के भयंकर घावों की मरहम-पट्टी करता था; मरते समय उन्हें सान्त्वना देता था और उनके लिए क़ब्रें खोदता था।

बाहरी दुनिया के लोग उसका वृत्तान्त सुनते थे और आश्चर्य से अवाक् रह जाते थे। बहुत से लोग उसके पास प्रशंसा के पत्र भेजते थे; अनेक वस्तुओं के पार्सल उसके रोगियों के लिए भेजते थे। बहुत से लोग उसके दर्शन करने और कुछ सहायता करने भी जाते थे।

इसी प्रकार सोलह साल तक निरन्तर सेवा करते रहने के बाद आखिर एक दिन चेतावनी आ पहुँची। हृदयहीन कोढ़ ने अपना घृणित हाथ उस पर भी फैला दिया था। एक दिन

वह किसी काम के लिए पानी उबाल रहा था। असावधानी से उबलता हुआ पानी उसके पैर पर गिर पड़ा। पर वह चकित रह गया, जब कि उसके पैर में गरम पानी का स्पर्श अनुभव नहीं हुआ।

"क्या मुझे कोढ़ हो गया है?" उसने जाकर डाक्टर से पूछा।

"मुझे बताते हुए अपने ऊपर घृणा हो रही है" डाक्टर ने रोते हुए कहा "पर, हां आपको कोढ़ हो गया है।"

उसी दिन से प्रार्थना में डैमियन ने 'मेरे भाइयो' के स्थान पर 'हम कोढ़ी भाई' शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया।

उसे अपने कोढ़ी हो जाने पर रत्ती भर भी पश्चात्ताप या विषाद नहीं था। "यदि मोलोकाई छोड़कर जाने से मैं स्वस्थ भी होता होऊँ, तो भी मैं जीते जी इस स्थान को छोड़कर नहीं जाऊँगा।" वह कहा करता था।

मृत्यु बड़ी क्रूरता और शीघ्रतापूर्वक उसके देह में घुस रही थी, पर वह अविचल भाव से पहले की ही भांति रोगियों की सेवा में लगा रहा। जो कुछ सुख और संतोष उसने जीवन में पाया था, उसके लिए वह परमात्मा का धन्यवाद करता था। कभी एक क्षण के लिए भी उसके मन में यह भाव नहीं आया: "हे भगवान्, मैंने कौन से बुरे कर्म किये थे, जो तूने यह दण्ड मुझे दिया।" जो कुछ था, उससे वह पूर्ण संतुष्ट था।

उसकी मृत्यु शय्या के पास तीन पादरी और तीन धर्म सेविकाएं बैठी थीं। "स्वर्ग में जाकर हम अनाथों को भूल तो नहीं जाओगे पिता!" एक पादरी ने पूछा।

"कभी नहीं, यदि परमात्मा मुझ पर दयालु हुआ, तो मैं इस कोढ़ीगृह के सब निवासियों के लिए उसके आशीर्वाद माँगूँगा।"

"और एलिजा की भांति अपना लबादा मुझे नहीं दे जाओगे क्या ?" पादरी ने फिर कहा।

"तुम इसका क्या करोगे ?" फिर थोड़ा रुक कर कहा "यह कोढ़ से भरा हुआ है।"

पर उससे अच्छा वस्त्र क्या संसार में और कोई था ?

६.

वीर बेरी

आल्प्स की पर्वतमालाओं में सेण्ट बर्नार्ड के गिरजे के अहाते में कुछ कब्रें बनी हुई हैं। इनमें एक छोटी-सी कब्र पर लगी पट्टी पर निम्नलिखित मर्मस्पर्शी लेख खुदा है :

"वीर बेरी ! उसने चालीस मनुष्यों के प्राण बंचाये। पर इकतालीसवें ने उसे मार डाला।"

ऐसे हृदयद्रावक लेख दुनियां में बहुत नहीं हैं।

× × ×

उन दिनों रेल नहीं थी; मोटरें भी नहीं थीं; चौड़ी, बढ़िया, पक्की सड़कें भी नहीं थीं। यात्रा का बीहड़ मार्ग पैदल ही पार करना पड़ता था।

आल्प्स की पर्वतमालाओं में ये यात्राएं सुखद भले हों, परन्तु सरल कभी भी नहीं होती थीं। ग्रीष्म ऋतु में, जब हिमराशि पिघलने लगती थी, तब यात्रा का कष्ट उस आनंद के कारण कुछ कम अखरता था, जो कि सुन्दर दृश्य, स्वच्छ वायु, सुनील गगन और गर्म धूप के कारण मन को सब ओर

से आप्लावित कर लेता था।

परन्तु आल्प्स में ऐसे दिन वर्ष में बहुत नहीं बीतते। ऐसे दिन अधिक बीतते हैं, जब ऋतु ठंडी होती है; दिन धुंधले होते हैं; वायु शरीर को काटती है। ऐसे दिनों में आल्प्स की पहाड़ियों के ऊँचे-नीचे मार्ग यात्रियों के लिए सुखद तो रहते ही नहीं, सुगम भी नहीं रहते। ऐसे दिनों में कोई रसिक सैर के लिए उस ओर नहीं जाता। किन्तु जो लोग वहीं रहते हैं; जिनके घर, गाँव और खेत उसी ओर बसे हुए हैं; जीवन की कठोर आवश्यकताओं और नियति के दुर्निवार आदेश ने जिन्हें पृथ्वी के इस भाग में ला पटका है, उन्हें तो इन मार्गों पर इन बुरे दिनों में भी आते-जाते रहना पड़ता ही है।

इन ही नहीं, बल्कि इनसे भी बुरे दिनों में इन सभी लोगों को अपनी जीवन की गतिविधि चालू रखनी पड़ती है; और ये दिन होते हैं बर्फीली सर्दियों के दिन! रास्ते पर चलते-चलते आकाश के किसी एक कोने से कोई बादल उठता दिखाई पड़ता है और कुछ ही देर बाद सिर के ऊपर रुई के गालों की भांति बर्फ बन कर बरसने लगता है। उसके बाद हड्डियों तक को पार करने वाली काटती हुई शीतल वायु के तूफान चलने लगते हैं। इन तूफानों में उड़ती हुई बर्फ के कारण रास्ता दीखना बंद हो जाता है; विवश होकर यात्री को रुक जाना पड़ता है; और इसका अर्थ प्रायः होता है— चार-चार पांच-पाँच फीट बर्फ में धँस जाना। ऐसे तूफानों में आल्प्स पर इतनी बर्फ पड़ जाना बिलकुल साधारण बात है। शीत, भूख, एकान्त और हवा के थपेड़ों के कारण अनेक यात्री

चेतना खो बैठते हैं। वे गिर जाते हैं; और ऊपर से फिर भी बर्फ पड़ती रहती है। जीते जी आदमी बर्फ की कब्र में दब जाता है; और फिर उसमें से निकलने की कोई संभावना दृष्टि-गोचर नहीं होती।

ऐसी भयंकर दुर्घटनाओं को जानते हुए भी, ऐसे भयंकर दिनों में भी ऐसे भयंकर मार्गों पर लोगों को चलना-फिरना पड़ता ही है। दुर्घटनाओं के भय से दुनियां के काम कहीं रुके हैं?

× × ×

"जल्दी करो; जल्दी करो! थोड़ी देर का विलम्ब भी घातक सिद्ध हो सकता है! आह, कैसा भयंकर शीत पड़ रहा है। जल्दी करो; जल्दी! देर नहीं।" सेण्ट बर्नार्ड का मठ ऐसी व्यस्तता और बेचैनी से गूंज रहा था, जैसे मठ के निवासियों पर कोई भयंकर आपत्ति आई हो। किन्तु आपत्ति मठवासियों पर नहीं आई थी, बल्कि वह तो सफेद, बर्फीली, मोटी चादर का रूप रख कर आल्प्स के पर्वतीय पथों पर लेटी हुई थी। भयंकर वर्फीला तूफान अभी-अभी शान्त हुआ था। ऐसी तेज और ठंडी हवा चल रही थी कि दांत अपने आप 'कटाकट' बजने लगते थे।

इस समय मठ के निवासी सेण्ट बर्नार्ड के प्रसिद्ध कुत्तों को, जो कि संसार में अपने ढंग की एक ही निराली वस्तु हैं, इस भयंकर शीत, बर्फ और हवा में बर्फ में दबे हुए यात्रियों की खोज व सहायता के लिए पहाड़ियों में जाने के लिए तैयार कर रहे थे। प्रत्येक कुत्ते की पीठ पर ब्रांडी की एक छोटी

बोतल, और गले में एक रूमाल में थोड़ा सा खाने का सामान बंधा था।

सब कुत्ते तैयार हो गये। गिनती में वे पचास से अधिक होंगे। बड़े-बड़े, शानदार और देवदुर्लभ गुणों से आभूषित कुत्ते! ऐसे शीत, ऐसी रात और इस काटने वाली हवा में यदि किसी देवता से भी प्रार्थना की जाती कि वह कहीं दूर पहाड़ी पर बर्फ में दबे यात्री को निकाल लाये, तो संदेह है कि वह अपनी स्वर्ग की गर्म अंगीठी और रज़ाई को छोड़कर यह काम करना पसन्द करता। किन्तु ये कुत्ते? ये इस कुसमय में भी बाहर जायेंगे, आनंद और उत्साह से कूदते हुए। मृत्यु के बर्फीले दांतों के बीच में से ये कितने ही मानव प्राणियों को फिर जीवन के क्षेत्र में खींच लायेंगे।

मठ के निवासियों ने एक बार प्यार से अपने कुत्तों की पीठ थपथपाई। हाय, भोला कुत्ता! इस प्यार भरी थपकी के बदले में वह प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन होम सकता है। फिर एक संकेत हुआ; उत्साह से भरे हुए कुत्ते रात, शीत और हवा की परवाह न करते हुए उत्साह के साथ बाहर निकल पड़े।

'ओपफोह, कैसा कड़ाके का जाड़ा है।' कहते हुए लोगों ने अपने कमरों की खिड़कियाँ बंद कर लीं और अंगीठियों के अधिक से अधिक पास जाकर बैठ गये, जिससे कमरे की अधिकतम गर्मी का सदुपयोग किया जा सके।

तूफान की बर्फीली रात सेण्ट बर्नार्ड में सोने के लिए नहीं होती। कुत्तों द्वारा ढूँढकर लाये गये अभागे व्यक्तियों की

सेवा के अतिरिक्त कई बार उन्हें कुत्तों के बुलाने पर स्वयं भी पहाड़ियों में बर्फ में दबे हुए यात्रियों की सहायता के लिए जाना पड़ता है। जब तक सब कुत्ते 'काम खत्म हुआ' का संकेत न दे दें, तब तक मठवासियों को सचेत और सावधान रहना होता है।

तेज़, काटने वाली हवा पेड़-पौधों को झकझोरती और खिड़कियों को खटखटाती हुई चलती रही। और काली ठंडी रात अपने नीरव पग रखती हुई मन्द गति से बढ़ती रही। मठ के निवासियों का समय उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा में बीतता रहा।

रात बीतने से पहले ही विपत्तिग्रस्त पथिकों की खोज में गये कुत्ते वापस लौटने प्रारम्भ हो गये। कोई अपने साथ समर्थ यात्रियों को लाये थे और कोई असफल ही लौट आये थे। जो यात्री कुत्तों की सहायता से रास्ता पहचान कर मठ तक पहुँच सके थे, उन्होंने अपने आप को दुबारा जीवित हुआ समझा। उन्होंने कुत्तों को मन ही मन कितने ही आशीर्वाद दिये।

अब सबेरा होने लगा था और दूर-दूर पहाड़ियों में से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें आने लगीं। वे मठवासियों को सहायता के लिए पुकार रहे थे। उन्हें कोई ऐसा अभागा मनुष्य बर्फ में दबा हुआ मिल गया था, जिसे आस-पास की बर्फ़ खुरचकर उन्होंने मरने से तो बचा लिया था, किन्तु अपने छोटे से शरीर से वे उसे बर्फ के ढेर में से निकालने में असमर्थ थे। इसके लिए वे अपने मालिकों को पुकार रहे थे। और उनके मालिक ? परमात्मा उन पर सदा अपनी कृपा रखे—वे उस कड़ाके

की सर्दी में अपने-अपने लबादे ओढ़ कर उन प्राणियों के प्राण बचाने के लिए मठ की कोठरियों से निकल पड़े, जिन्हें कि वे जानते-पहिचानते तक नहीं थे; जिनके साथ उनका केवल इतना ही सम्बन्ध था कि दोनों एक ही परमात्मा की सृष्टि थे।

इस प्रकार कितने ही लोगों को बर्फ़ में से खोद-खोद कर निकाला गया। दोपहर होते-होते सब कुत्ते और मठवासी मठ में वापस लौट आये।

"पर अभी तक बेरी वापस नहीं आया," सभी मठ-वासियों के मुख में यही वाक्य था। और जब तक बेरी न लौट आये, तब तक काम पूरा नहीं समझा जा सकता। अवश्य ही वह कुत्ता किसी की सहायता में लगा है।

यह प्रतीक्षा और उत्कण्ठा अभी बनी ही हुई थी कि एक विशालकाय, परन्तु सौम्य कुत्ते ने मठ में प्रवेश किया। एक बारह साल का अर्ध अचेत बालक उसकी पीठ पर चिपका हुआ था।

"बेरी, शाबास! शाबास बेरी!" मठवासी उल्लास से पागल हो उठे। बेरी का उन्होंने ऐसा स्वागत किया, जैसा किसी युद्ध से जीत कर लौटे हुए सेनापति का किया जाता है। ऐसा स्वागत उचित भी था, क्योंकि यह बालक चालीसवाँ प्राणी था, जिसे बेरी ने अपने छोटे-से जीवन में मृत्यु के ठंडे पंजों में से बचाया था।

× × ×

इस बार का तूफान पिछले सभी तूफानों से अधिक भयंकर रहा। पूरे दिन भर बर्फ़ गिरती रही। कहीं-कहीं पर

बर्फ की परत पांच-पांच फुट मोटी हो गई थी। सारे ही इलाके में जन-धन की भारी क्षति हुई। सेण्ट बर्नार्ड के कुत्तों ने इस बार भी पहले जैसी ही अलौकिक क्षमता एवं प्रवृत्ति का परिचय दिया। इस बार भी सैकड़ों व्यक्तियों का श्वेत मृत्यु में से उद्धार किया गया। किन्तु इतने पर भी इस बार सेण्ट-बर्नार्ड के मठ में आनन्द और उल्लास नहीं है। सभी के मुख पर विषाद की हलकी झांई-सी पड़ी हुई है। सबसे अन्त में लौट कर आने वाला बेरी इस बार अब तक लौट कर नहीं आया है; और न पहाड़ों में कहीं से उसके भौंकने की आवाज ही सुनाई पड़ रही है। या तो उसे अब तक लौट आना चाहिये, या फिर सहायता की पुकार के रूप में उसके भौंकने की आवाज़ सुन पड़नी चाहिये। पर दोनों ही बातें नहीं हैं, इससे सभी को ऐसा लग रहा है कि बेरी कहीं संकट में फंस गया है।

सारा दिन बीत गया; बेरी नहीं लौटा। उसके बाद एक और रात बीत गई; बेरी फिर भी नहीं लौटा। तब सेण्ट-बर्नार्ड के कुत्ते एक बार फिर मठ से बाहर निकले। पर इस बार सिपाही अपने सेनापति को ढूंढ़ने के लिए निकले। बेरी इस मठ का सबसे बड़ा और सबसे अच्छा कुत्ता था।

लगभग दो घंटे बाद ही कुत्तों ने अपने साथी का शव ढूंढ लिया और उनके भौंकने की संकेत-सूचक आवाजें मठ में सुनाई पड़ीं। मठवासी अधीरता-पूर्वक दौड़ते-भागते वहां पहुंचे, जहां कुत्तों ने बेरी का शव पड़ा देखा था।

सफेद बर्फ के ऊपर बेरी का निष्प्राण देह पड़ा था।

उसके शरीर में गोली का घाव था, जिससे बहुत-सा खून बह कर बर्फ पर जम गया था। पास में ही एक अभागा व्यक्ति बर्फ में जमा पड़ा था। उसके हाथ में बन्दूक थी। बन्दूक और बन्दूक वाला दोनों ही ठण्डे हो चुके थे।

अनुमान करना कुछ भी कठिन नहीं था। बेरी बहुत बड़े डील-डौल का कुत्ता था। जब वह इस बर्फ में दबे मनुष्य की सहायता करने इस भाग्यहीन पुरुष के पास पहुँचा, तो यह व्यक्ति डर गया। इसने समझा कि यह कुत्ता मुझे मारने आ रहा है और इसने बेरी को गोली मार कर अपनी प्राणरक्षा का द्वार भी अपने ही हाथों से बंद कर लिया।

बेरी के शव को देखकर मठवासियों की आँखों में आँसू भर आये। उनमें से कितने ही तो फूट-फूट कर रोने लगे। उन्हें ऐसा लगा कि जैसे उनका कोई सगा सम्बन्धी उनसे बिछुड़ गया हो। मठाध्यक्ष ने कहा : "एक कायर व्यक्ति की भूल से हमारा एक हाथ कट गया।" बात मर्मस्पर्शी थी और सत्य थी।

वे बेरी के शव को बड़े यत्न और आदर से उठा कर लाये और उसकी कब्र वहाँ बनाई, जहाँ कई बड़े-बड़े सन्त अनन्त निद्रा में विश्राम कर रहे हैं।

× × ×

उसी छोटी-सी कब्र पर लिखा है :

"वीर बेरी! उसने चालीस मनुष्यों के प्राण बचाये। पर इकतालीसवें ने उसे मार डाला।"

७.

प्रताप और चेतक

महाराणा प्रताप का हृदय अरावली की कड़ी से कड़ी चट्टानों के टुकड़ों से बना था। ऐसा दृढ़, कि देख कर इन्द्र का वज्र भी लज्जित हो जाये। जिसकी दृढ़ता से उसकी तुलना की जा सके, ऐसा महावीर इस विश्व-ब्रह्माण्ड में दूसरा कोई नहीं हुआ।

पर उस एक दिन में महाराणा प्रताप दो-दो बार रोया।

रोती हैं स्त्रियां, रोते हैं कायर, और रोते हैं असहाय। पुरुष के नयनों में पानी आ जाये, तो पुरुषत्व लांछित होता है। पर उस दिन रोने की नयी मर्यादा बनी। जान पड़ा कि ऐसे भी क्षण होते हैं, जिनमें रो न पड़े, वह पुरुष नहीं, पिशाच है।

हल्दीघाटी के मैदान में राजपूती सेना की पूर्णाहुति हो चुकी थी। सब राजपूत सम्मुख समर में काम आये; मैदान मुगल सेना के हाथ रहा। महाराणा प्रताप भी शायद मेवाड़ की मानरक्षा पर बलि हो गया होता, परन्तु वीरों में वीर कहे जाने योग्य मानसिंह झाला ने अपना रक्त देकर महाराणा की

मृत्यु को भुलावा दे दिया। उसने राणा प्रताप के न चाहते हुए भी उसे बलात् समराङ्गण से बाहर जाकर अपने प्राण बचाने को विवश किया। जौहर व्रत के धनी राजपूतों का शिरोमणि महाराणा समरभूमि से अपने प्राण बचाकर भाग निकला। परन्तु जिस प्रकार विवश होकर वह अपनी जीवन-रक्षा के लिए भाग रहा था, उसकी वेदना से उसकी आँखों से रह-रह कर आँसू की बूँदें टपकने लगीं। मरना कितना सरल था; पर महाराणा के मरने का सुअवसर आया नहीं था। उसे जीना होगा; जैसे भी हो, भागकर, छिपकर, युद्ध से मुख फेर कर भी उसे जीना ही होगा। उसके लिए मानसिंह झाला आत्मबलिदान जो कर चुका था। क्षोभ से, विवशता से, माना झाला की वीरता के स्मरण से महाराणा की आँखें गीली हो रही थीं।

महाराणा अपनी जीवन-रक्षा के लिए चेतक पर सवार होकर तेजी से भाग रहा था। रक्त, शवों एवं आहतों से परिपूर्ण समरभूमि उसकी पीठ पीछे दूर और दूर होती जा रही थी। उस ओर से आता हुआ कोलाहल क्षीणतर होता जा था। महाराणा के मनश्चक्षुओं के आगे प्रातःकाल से अब तक का सारा घटनाचक्र चित्र की भांति स्पष्ट हो उठा।

प्रभात की प्रथम रश्मियों के साथ युद्ध आरम्भ हुआ। पहले ही दौर में राजपूतों ने मुगलों के छक्के छुड़ा दिए। मुगल घबराकर पीछे हटने लगे। तब बादशाह के सगे भतीजे महाबत खां ने मुगल सेना की कमान संभाली। दोपहर तक मुगलों का तोपखाना मैदान में आ पहुँचा। राजा गोविन्दसिंह ने अपने

पाँच सौ घुड़सवारों के साथ तोपखाने पर आक्रमण किया और तोपों के मुँह बन्द कर दिये। इस समय महाराणा ने सलीम पर आक्रमण किया और चेतक ने सलीम के हाथी पर अपने पैर जमा दिये।

ये सब चित्र महाराणा के मन:पटल पर अत्यन्त स्पष्ट रूप से चित्रित होते जा रहे थे। चेतक पर महाराणा को अपार गर्व हुआ। एक बार प्यार से चेतक की गर्दन पर हाथ फेरे बिना वे न रह सके। महाराणा की भांति इस समय चेतक का देह भी बुरी तरह क्षतविक्षत हो रहा था। हाय रे विश्वासी प्राणी ! अपने घावों की अपेक्षा भी अधिक व्यथा चेतक के घावों को देखकर महाराणा को हो उठी।

उसके बाद महाराणा ने सलीम पर वार किया। वार ओछा पड़ा; सलीम का हाथी भाग निकला। और मध्याह्न के बीत जाने पर, जबकि विजयश्री राजपूतों की ओर आती दिखाई पड़ती थी, एकाएक बिल्कुल ताजी नई मुगल सेना ने रणभूमि पर प्रवेश किया। उसके आते ही मेवाड़ का भाग्य अन्धकार-मय हो गया।

महाराणा आगे कुछ न सोच सके। दु:खी हृदय से उन्होंने सिर घुमाकर उस भीषण रंगमंच की ओर देखा; जहां से वह दु:खान्त अभिनय करके लौट रहे थे।

सिर घुमाकर देखते ही महाराणा चौंक उठे। दो मुगल घुड़सवार घोड़े दौड़ाये, उनका पीछा करते आ रहे थे। यदि मामा झाला ने आत्म बलिदान न किया होता, तो महाराणा प्रताप सा तेजस्वी योद्धा तुरन्त रुककर और मुड़कर तलवार

से उनका स्वागत करता। परन्तु इस समय उसके प्राणों का मूल्य बहुत ज्यादा आंका जा चुका था। उन बहुमूल्य प्राणों को इस तरह संकट में नहीं डाला जा सकता था। जीवन अब महाराणा का अपना नहीं था।

जिस प्रताप ने हल्दीघाटी में खड़े बाइस हज़ार राजपूत वीरों से शरीर में प्राण रहते समर से पराङ्गमुख न होने की शपथ करवायी थी, उसी प्रताप ने संघर्ष से बच निकलने के लिए थके हुए चेतक को एड़ लगाई। भयङ्कर से भयङ्कर प्रहारों के बीच में जिसने अपने स्वामी के आदेशों का पालन किया था, वह चेतक बेहद थका होने पर भी उस एड़ के भीतर छिपे अर्थ को सम्पूर्ण रूप समझ गया। फिर जैसे उसके पङ्ख लग गये। उसकी परिश्रान्त मांसपेशियों में फिर से नई विद्युत दौड़ उठी। स्वामी की एड़ में जो अधीरता थी, उसे अनुभव करके वह वायुवेग से दौड़ने लगा। परन्तु प्रतिद्वन्द्वी मुगल घुड़सवार निकट और निकट आते गये। उनके घोड़े ताजे और तेज थे।

महाराणा रह-रह कर बीच-बीच में पीछे की ओर सिर घुमाकर पास और पास आते हुए मुगल घुड़सवारों की ओर देख लेता था। उन्हें देखने पर हर बार उसके शरीर में एक ऐसी सनसनी दौड़ जाती थी, जिसे चेतक भी पूरी तरह अनुभव कर लेता था। अनुभव के साथ ही उसकी गति और भी तीव्र हो जाती थी। इस समय घोड़ा और घुड़सवार जैसे मिल कर एक हो गये थे। एक तन, एक मन, और एक प्राण।

तभी सामने एक नाला आ पड़ा। प्राण बचाकर भागता हुआ घुड़सवार अत्यन्त व्यस्त हो उठा। यदि घोड़ा नाले को

तैर कर पार करने लगे, तो पीछा करते हुए मुगल एकदम ही निकट आ जायें और पानी में असहायावस्था में भाले के वार से ही समाप्त कर दें। फिर क्या हो ?

बिना किसी संकेत के ही चेतक ने महाराणा के मन का भाव समझ लिया; उनके हृदय साथ-साथ जो धड़क रहे थे। फिर इतना पुराना सुख-दुख का साथी भी इस प्रकार भावों को न समझे, तो और कौन समझे ?

राणा प्रताप ने छलछलाती आँखों से चेतक की गर्दन पर प्यार भरा हाथ फेरा और उसके उत्तेजित होठों से निकला 'चेतक !'

अगले ही क्षण चेतक नाले के उस पार था। महाराणा के आँसू थमे नहीं। वह समझ रहा था कि घोड़ा कितना थका हुआ है। इसी से उसे चेतक को एड़ लगाने की हिम्मत न होती थी। परन्तु उसे ऐसा लगा कि जैसे घोड़ा मेवाड़ के लिए उसकी अपेक्षा ज्यादा बलिदान कर रहा है। तभी उसे माना झाला का ध्यान आ जाता; फिर आँसू रुकते कैसे ?

पीछा करने वाले मुगल नाले को पार न कर सके। जब कुछ देर बाद महाराणा को उनके आने का कोई चिह्न दृष्टि-गोचर न हुआ, तो उसने चेतक की चाल धीमी कर दी। तब स्वामी और सेवक में मन ही मन मूक वार्तालाप चलने लगा। महाराणा ने कहा—"शाबास, चेतक शाबास, आज केवल तुम्हारे ही बल से मेवाड़ का सौभाग्य बचा रह गया। तुम न होते तो न जाने क्या होता !"

"धन्यवाद, स्वामी धन्यवाद ! मैंने तो केवल अपना कर्तव्य

पूरा किया है। माना झाला का बलिदान मैंने अपनी आँखों से देखा था। यदि मैं केवल इतना भी न करता, तो कितने बड़े भारी कलंक की बात होती।"

"परन्तु अब तो तुम बहुत थक गये होगे ?"

"हां स्वामी; थक तो बहुत बुरी तरह गया हूं। थकान से इस समय पेशी-पेशी अकड़ी जा रही है। पर अब तो मंजिल दूर नहीं होगी ?"

"मंजिल अब कुछ दूर नहीं है। आज तुम्हारी खूब अच्छी मालिश होगी और मेवाड़ की कोमलतम घास तुम को खाने को मिलेगी।"

"धन्यवाद स्वामी, हार्दिक धन्यवाद।"

तभी पीछे से मेवाड़ी बोली में किसी का पुकारता हुआ स्वर सुनाई पड़ा : "नीले घोड़े के सवार हो ! रुकना, जरा रुकना !"

अपने और पराये की बोली पशु खूब समझते हैं; चेतक रुक गया। महाराणा ने देखा कि कोई अकेला घुड़सवार आता हुआ उन्हें पुकार रहा है। यह अकेला आदमी चाहे मित्र हो, या शत्रु, किन्तु थके हुए चेतक का दौड़ाने को उनका मन नहीं हुआ। शत्रु भी हो, तो अब उससे अपने बल से ही निपटारा करना होगा, यह सोचकर राणा रुक रहे।

जो पास आया, वह महाराणा का सगा छोटा भाई, किसी समय का प्राणघातक शत्रु, शक्तिसिंह था। परन्तु आज दोनों फिर प्रेम से मिले। पिछले विद्वेष को विपत्ति ने भुला दिया।

जिस समय दोनों भाई परस्पर स्नेहालिंगन कर रहे थे,

उसी समय चेतक लड़खड़ा कर गिर पड़ा। अत्यधिक श्रान्ति उससे अपना मूल्य चुका रही थी। एक काली छाया संध्या के धुंधले पड़ते प्रकाश में उसे ढाँप रही थी। जहाँ माना झाला पहुच चुका था, उसी लोक से चेतक के लिए भी सुरीला, संगीत-पूर्ण आह्वान आ रहा था।

अत्यन्त विवशता भरी दृष्टि से चेतक ने महाराणा की ओर देखा : "चल दिया स्वामी, अब मैं चल दिया। तुम्हारी और कुछ सेवा न कर सका।"

महाराणा ने चट से अपने आपको भाई के स्नेहालिङ्गन से छुड़ा लिया और अपने फटते हृदय को जैसे-तैसे संभाल कर चेतक के पास आकर प्यार से अपने दोनों हाथ चेतक के मुख पर रख दिये। चेतक ने इस स्पर्श का अनुभव किया। क्षण भर के लिए उसका सर्वाङ्ग पुलकित होकर सिहर उठा और अगले ही क्षण सदा के लिए अकड़ गया।

शक्तिसिंह अब पास आ गया था। उसकी ओर देखकर महाराणा ने रुद्ध-कण्ठ से कहा : "हल्दीघाटी का एक वीर योद्धा यहां बलि हो गया।"

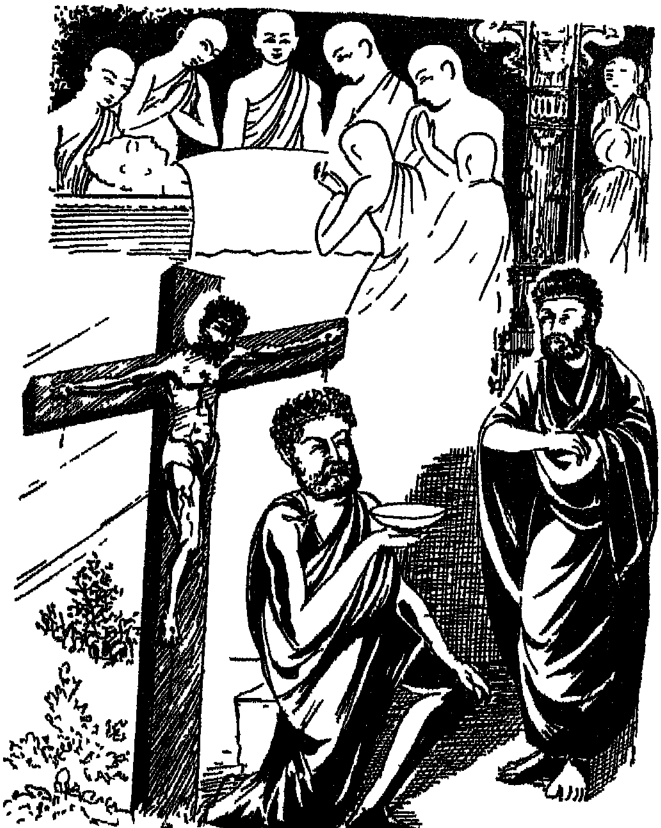
और उन्होंने कपड़े से अपनी आँखें पोंछ लीं।

× × ×

इसी से कहता हूं, उस दिन रोने की नयी मर्यादा बनी।

खण्ड २

महापुरुषों के अन्तिम क्षण



१. महामनीषी सुकरात
२. तथागत बुद्ध
३. महात्मा ईसा
४. गुरु तेगबहादुर
५. ऋषि दयानन्द

१.

महामनीषी सुकरात

"उस दिन सवेरे से ही प्राय: सभी मित्र सुकरात के पास बैठे हुए थे," फेडो ने कहा : "मैं खुद भी वहीं था। सारे दिन विभिन्न विषयों पर चर्चा होती रही और अपराह्न हो गया।"

"अच्छा अब हमारे लिए क्या आज्ञा है ? हम आपकी किस प्रकार अधिकतम सेवा कर सकते हैं ?" क्रिटो ने अन्त में पूछा।

"वही करना क्रिटो, जो मैं सदा से तुम्हें कहता रहा हूँ।" सुकरात ने उत्तर दिया : "अपनी आत्मा के विषय में सदा सचेत रहना। इसी प्रकार तुम मेरी, मेरे सिद्धांतों की और अपनी भी अधिकतम सेवा कर रहे होवोगे, चाहे तुम इस विषय में कोई संकल्प न भी करो। परन्तु यदि अपनी आत्मा के विषय में असावधान हो जाओगे, तो तुम्हारे इस समय के किये गये सब संकल्प भी व्यर्थ सिद्ध होंगे।"

"हम सब इसका पूरा प्रयत्न करेंगे", क्रिटो बोला : "पर हम आपकी अन्त्येष्टि किस प्रकार करें ?"

"जिस प्रकार तुम चाहो। पर पहले तुम मुझे पकड़ तो लेना; देखना कहीं मैं छूटकर न भाग जाऊं।" फिर वह हमारी ओर देख कर मुस्कराने लगा : "मित्रो, मैं क्रिटो को विश्वास नहीं दिला पा रहा कि वही मैं सुकरात हूँ, जो तुमसे वार्तालाप कर रहा हूँ और युक्ति-प्रत्युक्ति कर रहा हूँ। वह समझता है कि मैं शरीर हूँ, जिसे कि वह कुछ देर बाद शव-रूप में देखेगा। इसी से वह पूछता है कि मेरी अन्त्येष्टि किस प्रकार करे। जितनी भी युक्तियाँ मैंने उसे यह समझाने के लिए दीं कि विष पीने के बाद मैं तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा और पवित्रात्माओं के आनन्द लोक में जा पहुँचूँगा, वे सब व्यर्थ गयीं। ये युक्तियाँ मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए ही सन्तोषजनक थीं। अब तुम क्रिटो के निकट मेरे प्रतिभू (जामिन) बन जाओ, जैसा कि वह मेरे लिए न्यायालय में बना था। अन्तर इतना ही है कि वह इस बात का प्रतिभू था कि मैं भाग नहीं जाऊंगा; पर तुम इस बात के प्रतिभू रहना कि मैं मरने के बाद चला ही जाऊंगा और तुम्हारे साथ नहीं रह सकूँगा। इस ज्ञान से क्रिटो को तब कम दुःख होगा, जब कि वह मेरे शव को जलाये या दफनाये जाते देखेगा। वह समझेगा कि ये भयंकर अत्याचार मुझ पर नहीं किये जा रहे हैं। अन्त्येष्टि के समय वह यह न समझेगा कि यह सुकरात है, जिसे हम उठा रहे, कब्र तक ले जा रहे या गाड़ रहे हैं। क्रिटो, शब्दों का ग़लत प्रयोग अपने आप में तो दोष है ही, यह आत्मा को भी दूषित करता है। तुम प्रसन्न रहना और यही समझना कि तुम सुकरात के शरीर की अन्त्येष्टि कर रहे हो। वह अन्त्येष्टि तुम्हें जैसी रुचे, जैसी

ठीक लगे, कर सकते हो।"

इतना कहकर वह उठा और स्नान के लिए दूसरे कमरे में चला गया। क्रिटो भी उसके साथ चला गया और हमें प्रतीक्षा करने को कह गया। इस बीच में हम उसकी युक्तियों पर विचार-विमर्श करते रहे और उस विपत्ति की भयंकरता के विषय में सोचते रहे, जो हम पर आ पड़ी थी। हमें लगता था कि जैसे हमारा पिता मर रहा है और हम शेष सम्पूर्ण जीवन के लिए अनाथ हो रहे हैं।

जब वह नहा चुका और उसके बच्चे उसके पास लाये गये—उसके दो छोटे-छोटे और एक बड़ा जवान लड़का था—और उसके परिवार की स्त्रियाँ आ पहुँचीं, तो उसने उन्हें अपने अन्तिम उपदेश दिये। इसके बाद उसने स्त्रियों और बच्चों को वापस भेज दिया और हमारे पास लौट आया।

अब तक सूर्यास्त का समय हो चला था। वह काफी देर तक अन्दर के कमरे में रहा था। स्नानागार से बाहर आकर वह हमारे पास बैठ गया, पर उसके बाद अधिक बातचीत नहीं हुई। कुछ ही देर बाद सरकारी कर्मचारी आया और सुकरात के सामने खड़ा होकर कहने लगा: "सुकरात, मैं जानता हूँ कि तुम और लोगों की भांति झगड़ालू नहीं हो। वे मुझ पर क्रुद्ध होते हैं और मुझे कोसते हैं, जब मैं उनसे विष पीने के लिए कहता हूँ। पर मुझे तो अधिकारियों के कहने पर ऐसा करना पड़ता है। अब तक यहां जितने भी व्यक्ति आये हैं, तुम उन सब में श्रेष्ठ, सौम्य और भद्र हो। मुझे विश्वास है कि तुम मुझ पर क्रुद्ध न होकर उन्हीं पर क्रुद्ध होओगे, जो वस्तुतः

दोषी हैं। अच्छा, विदा। जो अवश्यंभावी है, उसे यथाशक्ति धीरता से सहने का प्रयत्न करना। तुम समझ गये होगे कि मैं किस लिए आया हूँ।" इतना कहकर वह रोता हुआ बाहर की ओर चल पड़ा।

सुकरात ने उसकी ओर देखा और कहा : "जैसा तुमने कहा है, मैं वैसा ही करूँगा।" और फिर हमारी ओर देख कर कहने लगा : "यह व्यक्ति कितना शिष्ट और भद्र है। जितने समय मैं यहां रहा हूँ, वह बराबर मुझसे मिलने आता रहा है। कई बार उसने मुझसे बात भी की है। वह सर्वोत्तम व्यक्तियों में से एक है। अब वह कितने दुःख से मेरे लिए रो रहा है। अच्छा, क्रिटो, हमें उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। यदि विष तैयार हो, तो उसे मंगवाओ; नहीं तो तैयार करवाओ।"

क्रिटो ने कहा : "नहीं सुकरात, मेरा खयाल है कि अभी सूर्य पहाड़ियों के ऊपर है। अभी वह छिपा नहीं है; और मैं जानता हूँ कि बहुत से व्यक्ति काफी देर बाद विष पीते हैं। आज्ञा हो चुकने के बाद भी वे मजे से खाते-पीते और मित्रों के साथ गपशप करते हैं। इसलिए जल्दी मत मचाओ; अभी काफी समय है।"

सुकरात ने उत्तर दिया : "जिनके बारे में तुम कहते हो क्रिटो, उनके लिए ऐसा करना स्वाभाविक है। वे समझते हैं कि ऐसा करने से वे लाभ में रहेंगे। पर मेरा तो ऐसा खयाल नहीं है। जो जीवन समाप्त हो चुका है, उसे इस प्रकार लालच से थोड़ी देर के लिए बचाने के प्रयत्न में मुझे आत्मग्लानि के

सिवा और क्या प्राप्त होगा। इसलिए, जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। इनकार मत करो।"

क्रिटो ने पास खड़े हुए अपने दास को संकेत किया। दास बाहर चला गया और थोड़ी देर बाद उस व्यक्ति के साथ लौट आया, जिसको विष देना था। वह एक प्याले में तैयार विष लिये हुए था। उसे देखकर सुकरात ने पूछा : "तुम इन चीजों को भली भांति समझते हो। मुझे इसका प्रयोग किस प्रकार करना होगा ?"

"तुम्हें इसे सिर्फ पीना भर है"—उसने उत्तर दिया : "और उसके बाद तब तक टहलते रहना है, जब तक तुम्हारी टांगें भारी न होने लगें। उसके बाद लेट जाना। यह अपना कार्य स्वयं कर लेगा।" इतना कह कर उसनें प्याला सुकरात के हाथों में थमा दिया। सुकरात ने प्रसन्नतापूर्वक, बिना कांपे, मुख की मुद्रा या रंग में रंचमात्र भी विकार के बिना उस प्याले को ले लिया और स्थिर दृष्टि से उस व्यक्ति की ओर देखते हुए पूछा : "देव-बलि के विषय में तुम क्या कहते हो ? वह मैं इसमें से दे सकता हूँ या नहीं ?"

"हम केवल उतनी ही मात्रा तैयार करते हैं, जितनी पर्याप्त होती है।" उसने उत्तर दिया।

"मैं समझ गया। पर मैं देवताओं से प्रार्थना तो कर ही सकता हूँ; और उनसे मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी यहां से आगे की यात्रा शुभ हो। तथास्तु।"

इन शब्दों के साथ उसने प्याला अपने होठों से लगा लिया और बड़ी शान्ति व प्रसन्नता के साथ सारे विष को पी गया।

उस समय तक हममें से अधिकांश लोग अपने शोक को संभाले बैठे थे ; पर जब हमने उसे विष पीते और प्याले को खाली होते देखा, तो हम स्थिर न रह सके। रोकते-रोकते भी मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। मैंने अपना मुँह ढंक लिया और रोने लगा। यह रोना उसके लिए नहीं, बल्कि अपने दुर्भाग्य पर था कि मैं एक ऐसा मित्र खो रहा था। क्रिटो इससे पहले ही अपने आँसुओं को संभालने में असमर्थ होकर बाहर चला गया था। अपोलोडोरस, जो सारे समय ही रोता रहा था, अब जोर से चीख मार कर रो पड़ा; और उसके साथ ही हम सब भी सिसकियां ले-लेकर रोने लगे। केवल सुकरात शान्त रहा।

"मित्रो, तुम यह क्या कर रहे हो"—वह स्नेहपूर्ण भर्त्सना के स्वर में बोला। "मैंने स्त्रियों को केवल इसीलिए भेज दिया है कि कहीं वे इस प्रकार की अव्यवस्था न करें; क्योंकि मैंने सुना है कि मनुष्य को पूर्ण शान्ति में मरना चाहिये। इसलिए अपने आपको शान्त करो और सहन करो।"

यह सुनकर हम बहुत लज्जित हुए और रोने से रुक गये।

सुकरात टहलता रहा। अन्त में उसने कहा कि अब टांगें भारी प्रतीत हो रही हैं। फिर वह बताये हुए के अनुसार पीठ के बल लेट गया। जिस आदमी ने उसे विष दिया था, वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसके पैरों और टांगों की परीक्षा करने लगा। फिर उसने उसके पैर को जोर से दबा कर पूछा : "कुछ अनुभव होता है ?"

सुकरात ने कहा : "नहीं।"

उसके बाद क्रमशः उसकी टांगें और पैर अकड़ने लगे। तब वह लेट गया। जिस आदमी ने उसे ज़हर दिया था, वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसके पैरों और टांगों को देखने लगा। कुछ देर बाद उसने सुकरात के एक पैर को ज़ोर से दबाया और पूछा : "तुम्हें कुछ अनुभव होता है ?" सुकरात ने कहा "नहीं।" उसके बाद उसकी टांगें, और फिर धीरे-धीरे ऊपर का शरीर ठंडा और कड़ा होने लगा।

सुकरात इस ठंड और अकड़न को स्वयं अनुभव कर रहा था। वह बोला : "जब ज़हर हृदय तक पहुँच जायेगा, तब सब समाप्त हो जायेगा।"

ठंड उसकी कमर तक पहुँच चुकी थी। उसने चादर में से मुँह बाहर निकाला और बोला : "क्रिटो, मुझे एस्कलाप को एक मुर्गा देना था। क्या तुम याद करके उसे वह मुर्गा लौटा दोगे ?" ये उसके अन्तिम शब्द थे। क्रिटो ने कहा : "यह ऋण चुका दिया जायेगा। और कोई बात ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला। एक या दो मिनट बाद एक सिहरन सी दिखाई पड़ी। सेवकों ने उसके ऊपर से चादर हटाई। उसकी आँखें पथरा चुकी थीं। क्रिटो ने उसका मुख और आँखें बन्द कर दीं।

महामनीषी सुकरात का ऐसा अन्त हुआ, जो अपने समय का सबसे अधिक बुद्धिमान और न्यायप्रिय व्यक्ति था।

[प्लेटो के संवाद से]

२.

तथागत बुद्ध

उस दिन पावा में बुद्ध ने दोपहर का भोजन चुन्द के यहां किया। भोजन में बहुत से उत्तम पदार्थ तथा सुकरमद्दव (सुअर का मांस या नर्म चावल) था। बुद्ध ने पेट भर भोजन किया। उसके कुछ ही देर बाद उन्हें खूनी पेचिश की शिकायत हो गयी। ऐंठन की पीड़ा बहुत अधिक थी।

बीमारी के होते हुए भी बुद्ध शिष्य आनन्द तथा अन्य भिक्षुओं को साथ लेकर कुसीनारा की ओर चल पड़े। कुसीनारा पावा से तीन मील है। कष्ट अधिक होने के कारण मार्ग में जगह-जगह २५ बार बैठकर सूर्यास्त समय बुद्ध और आनन्द कुसीनारा पहुँचे। वहां हिरण्यवती नदी के तीर पर उपवन शालवन में गये। वहां बुद्ध ने जुड़वां शालों के बीच में उत्तर की ओर सिरहाना करके चारपाई बिछवाई और उस पर लेट गये। आनन्द और दूसरे भिक्षु पास बैठ गये। बुद्ध को अनुभव हो रहा था कि यह बीमारी अच्छी होने वाली नहीं है और अब उनका निर्वाणकाल निकट है।

"भन्ते, हम आपकी अन्त्येष्टि किस प्रकार करेंगे ?" आनन्द ने पूछा ।

"जैसे चक्रवर्ती राजा की अन्त्येष्टि की जाती है; उसी प्रकार तथागत की भी करनी चाहिये।" बुद्ध ने उत्तर दिया ।

"चक्रवर्ती राजा की अन्त्येष्टि कैसे की जाती है ?"

"चक्रवर्ती राजा के शव को नये वस्त्र से लपेटते हैं। उसके ऊपर धुनी रुई और उस पर फिर नया वस्त्र लपेटते हैं। फिर तेल की कड़ाही में रखकर दूसरी कड़ाही से ढांप कर सुगन्धित कंडों की चिता पर शव को जलाते हैं। जलाकर बड़े चौराहे पर उसका स्तूप बनाते हैं।"

यह सब सुनकर शोक के आवेग में आनन्द रोने लगा। बुद्ध ने उसे मृत्यु की अवश्यंभाविता तथा शरीर की नश्वरता के विषय में बहुत-सी बातें कह कर सान्त्वना दी ।

आनन्द बोला : "आप इस क्षुद्र गांव में निर्वाण को प्राप्त हों, यह ठीक नहीं। चम्पा, कौशाम्बी या वाराणसी जैसे किसी नगर में आपका निर्वाण होता, तो वहां के धनिक आपके शरीर का अच्छा सत्कार कर सकते।"

"ऐसा मत कह आनन्द! यहां भी काफी धनिक हैं। तू शहर में जाकर लोगों से कह दे कि उपवन शालवन में बुद्ध का निर्वाण हो रहा है। चलो; चल कर देख लो। पीछे मत कहना कि हमारे ग्रामक्षेत्र में बुद्ध का निर्वाण हुआ और हम अन्तिम समय उसके दर्शन न कर सके।"

आनन्द कुसीनारा में चला गया। वहां पर नगरवासी किसी कार्यवश एकत्र हुए थे। उन्हें आनन्द ने यह दुःसंवाद

सुना दिया। सुनते ही कुसीनारा के लोग बुद्ध के अन्तिम दर्शन के लिए दौड़ पड़े। वहां पर इतनी भीड़ एकत्र हो गयी कि सबको एक-एक करके दर्शन करवाना कठिन जानकर आनन्द ने यह व्यवस्था की कि एक परिवार का एक व्यक्ति ही बुद्ध की वंदना कर सके।

अन्तिम समय में सुभद्र नाम का एक परिव्राजक बुद्ध के दर्शन के लिए आया। वह बुद्ध से कुछ उपदेश और कुछ शंकाओं की निवृत्ति करवाना चाहता था। आनन्द ने कहा : "तथागत इस समय बहुत थके हुए हैं। आप उन्हें आराम करने दें।" पर सुभद्र ने बारम्बार आग्रह किया। बुद्ध ने उसकी आवाज सुन ली और आनन्द से कहा : "आनन्द, सुभद्र को मना मत करो। वह जो कुछ पूछेगा, परम ज्ञान की इच्छा से ही पूछेगा। कष्ट देने की इच्छा से नहीं।"

थोड़ी देर के वार्तालाप से ही सुभद्र प्रभावित हो गया और बौद्ध सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया। वह बुद्ध का अन्तिम शिष्य था।

इसके बाद बुद्ध ने महा-भिक्षु संघ के अनुशासन के सम्बन्ध में आनन्द से कुछ बातें कहीं; इन्हीं में उन्होंने कहा : "मेरे मरने के बाद छन्न भिक्षु (एक भिक्षु का नाम) का बहिष्कार करना। कोई उससे बोले नहीं; कोई उसे उपदेश न दे।"

इसके बाद बुद्ध ने सब भिक्षुओं को सम्बोधन करके कहा : "भिक्षुओ, यदि बुद्ध, धर्म और संघ के विषय में एक भिक्षु को भी कुछ शंका हो, तो वह अभी पूछ ले। पीछे मत कहना कि

शास्ता हमारे सम्मुख थे और तब हम उनसे पूछ न सके।"

एक बार, दो बार, तीन बार, बुद्ध ने भिक्षुओं से यही बात कही। पर किसी ने भी कुछ नहीं पूछा।

तब फिर बुद्ध ने भिक्षुओं को अन्तिम उपदेश दिया: "सब पदार्थ, जो कि बनाये गये हैं, नाशवान हैं। निरालस्य होकर जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करना उचित है।"

यह बुद्ध का अन्तिम वचन है। इसके बाद बुद्ध ने प्राण छोड़ दिये; और उनकी मृत्यु के साथ ही साथ सब ओर शोक का समुद्र उमड़ पड़ा। भिक्षु और नागरिक सभी शोक से व्याकुल हो उठे।

भिक्षु अनिरुद्ध और भिक्षु आनन्द ने वह रात धर्म-कथा में बितायी। उसके बाद सात दिन तक कुसीनारा के लोगों ने बुद्ध के शव का नृत्य, गीत, वाद्य, माला और गंध से सत्कार किया; और बाद में जिस प्रकार बुद्ध ने कहा था, उसी प्रकार का उनका अन्तिम संस्कार कर दिया।

जब सब भिक्षु बुद्ध की मृत्यु से शोकाकुल थे, उस समय सुभद्र नामक एक भिक्षु ऐसा भी था, जो प्रसन्न था। उसने भिक्षुओं से कहा: "भिक्षुओ, शोक मत करो। रोवो मत। हम उस महाश्रमण के चंगुल से मुक्त हो गये। 'ऐसा करो' और 'ऐसा मत करो' से उसने हमें परेशान कर रखा था। अब हमारी जो इच्छा होगी, करेंगे।"

ऐसा बुद्ध का अन्त हुआ, जिनकी शिक्षाएं आज इस भूमंडल के ४० करोड़ प्राणियों को अनुप्राणित करती हैं।

३.

महात्मा ईसा

एक के बाद एक चमत्कार प्रदर्शित करने के बाद ईसा को यह विश्वास हो गया कि जनता अब उसके इतना पक्ष में हो गयी है कि यदि वह जेरुसेलम में पहुँचकर शासन-सत्ता हाथ में लेने का प्रयत्न करे, तो उसे सफलता प्राप्त हो सकती है। इसी विचार से उसने अपना वेश-विन्यासादि परिवर्तित किया। इससे पहले वह एक सन्त और फकीर के वेश में रहता था, परन्तु जेरुसेलम की ओर अन्तिम यात्रा करने से पूर्व उसने अपना वेश राजा का-सा बनाया। उसने अपने आपको यहूदियों का राजा घोषित भी कर दिया। जब अपने बारह शिष्यों के साथ उसने जेरुसेलम के पूर्वीय द्वार से प्रवेश किया, तो उसके प्रशंसकों ने उसकी जय के नारे भी लगाये।

इन 'जय के नारों' ने ईसा में कुछ राजत्व का भाव भर दिया। वह सीधा जेरुसेलम के पवित्र मन्दिर में पहुँचा। वहां पर जितने पुजारी इत्यादि थे, उनको उसने धमकियां और धक्के देकर बाहर निकाल दिया। उसने कहा: "पुस्तक में

लिखा है कि मेरा—ईश्वर का—घर प्रार्थना का स्थान होगा और तुमने इसे चोरों का अड्डा बना रखा है।" पुजारी लोग उस समय तो भयभीत होकर भाग गये; परन्तु बाहर जाकर उन्होंने अपने आपको संगठित किया। उन्होंने इन सब बातों की शिकायत सैन्हेड्रिम (जेरुसेलम की सर्वोच्च धार्मिक समिति) से की। सैन्हेड्रिम ने ईसा को पकड़ने का निश्चय किया; परन्तु वे लोग नहीं चाहते थे कि ईसा को पकड़ते समय कुछ गुलगपाड़ा हो। अतः वे अवसर देखने लगे।

इस प्रारम्भिक सफलता के बाद भी ईसा को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। इससे उसके चित्त में काफी घबराहट पैदा हुई। उसे रह-रह कर मृत्यु का भय होने लगा, जिसकी शान्ति के लिए वह बार-बार प्रार्थना करता था। उसे अपने शिष्यों पर भी विश्वास नहीं रहा; और बाद की घटनाओं ने सिद्ध किया कि वे विश्वास योग्य थे भी नहीं। उसने अपने शिष्यों से कहा कि तुममें से एक मुझसे विश्वासघात करेगा। अपने प्रधान शिष्य पीटर से उसने कहा: "कल प्रभात का मुर्गा बोलने से पहले तू तीन बार मुझे नहीं पहिचानेगा।" इस पर पीटर ने काफी बुरा माना।

संध्या होने पर ईसा अपने शिष्यों के साथ फिर शहर से बाहर चला गया और उसने महुए की पहाड़ी पर रात बिताने का निश्चय किया। परन्तु भय अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था।

सर्वोच्च धार्मिक समिति इसी अवसर की प्रतीक्षा में थी। ईसा शहर से बाहर था और अब उसको पकड़ने में किसी

प्रकार का शोरगुल होने की आशंका नहीं थी। बारह में से एक शिष्य जूडास तीस सिक्के लेकर ईसा को पकड़वाने को तैयार हो गया। वस्तुतः ईसा इस समय इतना असहाय था, कि (उसके साथी बारह शिष्य थे; पर अब वे स्पष्ट देख रहे थे कि ईसा जेरुसेलम का राजा नहीं बन सकेगा; अतः उनकी मंत्री एवं न्यायाधीश बनने की आशाएँ भी मिट्टी में मिल चुकी थीं) उसे पकड़ने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। जब सिपाहियों ने ईसा को पकड़ लिया, तो सिर्फ एक आदमी ने तलवार से सिपाहियों पर वार किया; पर ईसा ने उसे भी रोक दिया। बाकी सब शिष्य भाग गये।

रात को बारह बजे ईसा सैन्हेड्रिम के सामने पेश किया गया। मध्य रात्रि में भी इस न्याय-अभिनय को देखने के लिए जनता भारी संख्या में उपस्थित थी। जिस बात के लिए ईसा को कठोर प्राणदण्ड दिया गया, उसके लिए आज शायद कुछ भी दण्ड न दिया जाये। पर संभवतः उन दिनों प्राणदंड देना साधारण बात थी। ईसा का सबसे बड़ा अपराध यह बताया गया कि वह अपने आपको 'परमात्मा का पुत्र' कहता था। यह बात उसने खुली अदालत में स्वीकार भी कर ली। सैन्हेड्रिम द्वारा प्राणदंड की घोषणा होते ही लोगों ने ईसा की दुर्दशा कर दी। कुछ ने उस पर थूका; कुछ ने उसे चपत मारे और कहा : "ओ भविष्यवक्ता, अब भविष्यवाणी कर कि तुझे अगला चपत कौन मारेगा!"

वहाँ पीटर को एक दासी ने पहिचान लिया और कहा कि यह भी ईसा के साथ था। इस पर पीटर ने तीन बार

शपथ खाकर झूठ बोला कि मैं इस व्यक्ति को जानता तक नहीं।

धार्मिक समिति द्वारा प्राणदंड दिये जाने के बाद भी लौकिक राज्य द्वारा उसकी पुष्टि आवश्यक थी। इसके लिए सीज़र के प्रतिनिधि, रोमन गवर्नर पाइलेट के सम्मुख ईसा को ले जाया गया। पाइलेट की पत्नी ने कोई भयानक स्वप्न देखा था; अतः वह ईसा को दंड देना नहीं चाहता था। उसने ईसा को छोड़ने के लिए युक्ति सोची। एक बदमाश डाकू बरब्बास भी उस समय क़ैद था। पाइलेट ने कहा कि ईसा और बरब्बास में से जनता जिसे कहे, उसे छोड़ दिया जाये। ईसा के विरुद्ध उपस्थित जनता को इतना भड़का दिया गया था कि उसने ईसा के मुकाबले में उस मशहूर डाकू को छोड़ देने की मांग की। पाइलेट ईसा के खून की जिम्मेदारी से बचना चाहता था। जब लोगों ने उसका यह रुख देखा, तो उन्होंने एक अमोघ शक्ति का प्रयोग किया। "ईसा अपने आपको राजा कहता है; और हम सीज़र के सिवाय किसी को राजा नहीं मानते।" उन्होंने कहा। इस युक्ति को टालना पाइलेट के लिए भी खतरनाक था। उसने पानी मंगवा कर पहले अपने हाथ धोये और कहा: "इस खून की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर नहीं लेता।" और उसने लोगों की इच्छानुसार ईसा को क्रास पर चढ़ा कर मारने की आज्ञा दे दी।

ईसा से अपने क्रास की लकड़ियां खुद ढोकर ले जाने को कहा गया; पर वह बहुत दूर न ले जा सका। तब एक और

चोर पर लदवा कर वे लकड़ियां ले जायी गयीं। उसे गलगोथा—नरमुंडों की भूमि—ले जाया गया। इस स्थान का यह नाम इसलिए पड़ा था, क्योंकि यहां असंख्य पुरुषों की हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। इस समय यह स्थान सैनिकों तथा नागरिक दर्शकों से सब ओर से घिरा हुआ था।

उन्होंने पहले ईसा को लाल कपड़े पहिनाये। काँटों का मुकुट उसके सिर पर रखा। उसके हाथ में एक दंड दिया और सामने झुककर कहा : "यहूदियों के राजा, प्रणाम !" इस प्रकार उपहास करने के बाद एक सैनिक ने उसका दंड छीनकर उसके सिर पर मारा। उसके बाद उसे पित्त मिला सिरका पीने को दिया गया। यह सिरका इसलिए पिलाया जाता था, जिससे हाथ-पैरों में कीलें ठुकते समय यन्त्रणा का अनुभव कम हो। पर ईसा ने उसे पीने से इनकार कर दिया। तब उसे क्रास पर चढ़ा दिया गया। उसके दायें और बायें दो डाकू भी क्रासों पर चढ़ाये गये। उन दोनों ने अपनी विपत्ति का कारण ईसा को ही समझा और मरते दम तक वे उसे कोसते रहे।

ईसा शारीरिक यन्त्रणाओं को काफी धैर्य के साथ सह रहा था। एक बार उसने कहा : "परमात्मा, तू इन्हें क्षमा करना; क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।"

परन्तु अब शारीरिक यन्त्रणा के साथ मानसिक यन्त्रणा भी प्रारम्भ हुई। चारों ओर एकत्र लोग उसकी खिल्ली उड़ाने लगे। एक ने कहा : "देखो, यह औरों को बचाने चला था; पर अपने आपको नहीं बचा सका।"

जेरुसेलम के प्रधान पुजारी ने कहा : "यदि वह परमात्मा का पुत्र है, तो अब क्रास पर से उतर आये। अब परमात्मा उसे बचाये।"

इस प्रकार के व्यंगों ने शारीरिक कष्ट के साथ मिलकर ईसा की हिम्मत तोड़ दी। वह बड़े जोर से चिल्लाया। तब एक आदमी ने यह समझकर कि वह पानी मांगता है, सिरके में स्पंज डुबोकर उसे पीने को दिया।

लोगों ने फिर हँसी उड़ाई। फिर व्यंग किये। क्रास पर चढ़े हुए डाकुओं ने भी उसे गालियां दीं। व्यथित होकर ईसा ने अन्तिम शब्द कहे : "एलि एलि लामा सुबक्तनी" अर्थात् हे मेरे परमात्मा, क्या तूने भी मुझे छोड़ दिया !

इसके साथ ही उसके प्राणपखेरू देह को छोड़कर उड़ गये। लोग एक दूसरे से कहने लगे : "क्या यह देवता हो सकता था ?"

अगले ही दिन द्रोही जूडास ने भी आत्महत्या कर ली।

४.

गुरु तेगबहादुर

गुरु गोविन्दसिंह के काल में सिख जाति जो इतने प्रचंड आलोक से प्रदीप्त हो उठी, उसका बहुत बड़ा श्रेय गुरु गोविन्दसिंह के पिता गुरु तेगबहादुर को है। उनके सात्विक बलिदान का रक्त चिरकाल तक सिक्खों को वीरत्व से अनुप्राणित करता रहा है। आज भी सिख सम्प्रदाय उन्हें 'सच्चा बादशाह' कह कर स्मरण करता है।

उस समय दिल्ली के लाल किले में तख्ते-ताऊस पर औरंगज़ेब बैठता था। वैसा मदान्ध, कट्टर और नृशंस शासक उससे पहले भारतवर्ष में और कोई नहीं हुआ था। यद्यपि हिन्दुओं को छल, बल और लोभ से मुसलमान बनाने का काम अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय भी हुआ, परन्तु औरंगज़ेब के शासनकाल में तो शासन का अर्थ ही हिन्दू को मुसलमान बनाना हो गया। यह चीज़ उसके समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। सृष्टि के अनिवार्य नियम के अनुसार क्रिया की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। राजपूत, मरहठे, सिख और बुंदेले

सफल विद्रोहियों के रूप में उठ खड़े हुए।

वह हिन्दुओं और मुसलमानों के संघर्ष का काल था। संघर्ष में गरमी और भी बढ़ जाती है। उसी गरमी का ही परिणाम था कि कश्मीर और पंजाब में हिन्दुओं, विशेष रूप में ब्राह्मणों, को मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया जा रहा था। इस प्रयत्न में मुख्य साधन भय और त्रास था।

लोगों से जितना सहा गया, उतना उन्होंने सहा। पर आखिर कितना सहते! अन्त में वे गुरु तेगबहादुर के पास आये और बोले: "महाराज, मुसलमानों ने हमारा जीना मुश्किल कर दिया है। अब सहा नहीं जाता। यदि कोई उपाय नहीं हुआ, तो अत्यन्त विवशता में हम सब को मुसलमान बन जाना पड़ेगा।"

उनकी विवशता से इनकार नहीं किया जा सकता था। पर इतनी बड़ी संख्या में लोग एकाएक मुसलमान बन जायें, यह भी सहने और सोचने लायक बात नहीं थी। दक्षिण में शिवाजी का प्रताप बाल सूर्य के समान उदित हो रहा था। ऐसे समय में हिम्मत हारने से कैसे काम चले! गुरु के माथे पर चिन्ता के बल पड़ गये। कुछ देर वह सोचते रहे। अन्त में बोले: "जाओ, औरंगजेब से कह दो कि अगर तेगबहादुर मुसलमान हो जायेंगे, तो हम सब मुसलमान हो जायेंगे; नहीं तो नहीं।"

वे लोग यह तो नहीं समझ सके कि इस उपाय से उनकी बिपत्ति का निवारण कैसे होगा, फिर भी कोई उपाय तो निकला, इससे उन्हें बड़ा आश्वासन हुआ।

औरंगज़ेब गुरु तेगबहादुर से पहले से ही प्रसन्न नहीं था। अत्याचारी वीर पुरुष से डरता है; क्योंकि वीर पुरुष अत्याचार के आगे सिर नहीं झुकाता, बल्कि छाती अड़ा कर भिड़ जाता है। गुरु की शिकायतें औरंगज़ेब के पास पहले ही से थीं। पर अब उसे मनचाही करने का एक बहाना मिल गया। उसने गुरु को दिल्ली बुला भेजा।

गुरु तेगबहादुर दिल्ली जाने को तैयार हुए। इस निमंत्रण का अर्थ वह भलीभांति जानते थे। यह मुड़ने या टूटने में से चुनाव करने का बुलावा था। पर यह बुलावा तो गुरु की अपनी इच्छा का ही परिणाम था। दिल्ली जाकर लौटना नहीं हो सकेगा, यह उन्हें मालूम था।

उन्होंने अपने पुत्र गोविन्दसिंह को बुलाया। मृत्यु से पहले जो कुछ कहना या समझाना उचित था, वह उन्होंने कहा और समझा दिया। अन्त में कहा : "बेटा, मृत्यु एक दिन सभी की होती है। उसका मुझे भय नहीं है। पर शव की दुर्गति होने की कल्पना मुझे मृत्यु से भी भयंकर लगती है।"

कहने वाले ने कह दिया; और सुनने वाले ने समझ लिया। गुरु दिल्ली के लिए चल पड़े। अपने इस प्रयाण में उन्होंने किसी को साथ नहीं लिया। वह यात्रा ही ऐसी थी। इसमें कोई कितनी दूर तक साथ देता।

दिल्ली पहुँचने पर उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया; और उन्हें प्राणदण्ड की आज्ञा हुई। इस विषय में गुरु को कुछ विशेष कहना-सुनना ही नहीं था; और कहने-सुनने का लाभ भी क्या था ?

पर औरंगजेब गुरु के प्राण नहीं लेना चाहता था। यह तो एक धमकी मात्र थी। उनके सामने विकल्प रखा गया कि वे मुसलमान बन जायें, तो उनके प्राण बच सकते हैं। पर गुरु ने तो प्राण बचाने का उपाय पूछा नहीं था। उन्होंने तो मरने से भीरुता प्रदर्शित की नहीं थी, इसलिए उनसे यह विकल्प मनवाना सम्भव न हुआ। जिस परिणाम के लिए यह सारा प्रपंच रचा गया था, वह आ उपस्थित हुआ। गुरु किसी तरह मुसलमान बन जायें, इसके लिए उन्हें तरह-तरह की यंत्रणाएं दी जाने लगीं। इन यंत्रणाओं के सच्चे और कभी-कभी अतिरंजित वृत्तान्त कर्णपरम्परा से सब ओर फैलने लगे।

कभी गुरु को गरम तवे पर बैठाया गया। कभी गरम सुइयां चुभाई जातीं। कई दिन-रात लगातार सोने नहीं दिया गया। पैसे पानेवाले गुंडे उन्हें तरह-तरह की अवाच्य और अश्राव्य गालियां देते। एक धर्मान्ध जाति की बुद्धि, जो कुछ क्रूरता करने के उपाय निकाल सकती थी, वे सब गुरु पर बरते गये।

इतनी यंत्रणाएं सह कर भी गुरु अपना धर्म त्यागने को उद्यत नहीं हैं, यह बात बिजली की तरह प्रजा में फैलती; और जिनके चित्त दुर्बल होते, उन्हें धैर्य बँधाती। जिनके पैर डगमगाते होते, वे भी गुरु के आदर्श को सामने रख कर संभल जाते। सबल युवक हृदयों में प्रतिशोध लेने की भावना उमड़ने लगती। गुरु की इस अपने आप निमंत्रित की हुई विपत्ति से, इस यंत्रणा-सहन से चिरकाल से सोई हुई महान् हिन्दू जाति

अपनी प्रमाद-निद्रा से जागने लगी। योद्धाओं की आँखों में लाली छाने लगी।

जितनी ही गुरु की दृढ़ता बढ़ती जाती, उतनी ही औरंगज़ेब की क्रूरता हठ पकड़ती जाती। दोनों में ऐसी होड़ लग गई कि सारा उत्तर भारत स्तब्ध होकर इस अद्भुत नाटक को देखने लगा।

जिसने अपने बाप को जीते जी कैद किया, तड़पा-तड़पा कर मारा; जिसने अपने भाई दारा को दिल्ली के बाज़ारों में बूढ़ी हथिनी की नंगी पीठ पर बिठाकर घुमवाया और अन्त में कत्ल करवा दिया; जिसने शुजा और मुराद को परलोक का रास्ता दिखाया, वह औरंगज़ेब काफिर गुरु से हार मानने वाला नहीं था। जो कुछ भी उपाय, जितनी भी बर्बरता उसके मस्तिष्क में आ सकती थी, वह उसने गुरु की आन को मिट्टी में मिलाने के लिए बरती। अंगुलियों पर राल और तेल में भींगे कपड़े लपेटे गये और उनमें आग लगा दी गयी। पर सचाई यह है कि मिट्टी ही मिट्टी में मिल सकती है। सोना मिट्टी में नहीं मिला करता। जितनी ही विपत्तियों की आंच तीव्र और तीव्रतर होती गई, गुरु की वीरता का कुन्दन उतना ही अधिक निखरता गया।

वीर हृदय उदार होते हैं, यह नियम औरंगजेब पर लागू नहीं होता था। यह बात सही है कि औरंगजेब वीर भी था, पर साथ ही वह पक्का कूटनीतिज्ञ और षड्यंत्रकारी था, जिसका हृदय की उदारता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कभी-कभी बड़ा अद्भुत अनुभव होने लगता है कि यह धर्म भी क्या अद्भुत वस्तु है ! इसकी रक्षा के लिए कितने ही अनगिनत वीरों ने हँसते-हँसते प्राण दे दिये; कितनी ही वीरांगनाओं ने छुरियों, विष की पुड़ियों और धधकती चिताओं का आलिंगन विधर्मी के स्पर्श की अपेक्षा कहीं अधिक पसन्द किया ! वह क्या उनकी एक मिथ्या कल्पना ही थी, जिससे उन्हें इतना अलौकिक बल और धैर्य प्राप्त होता था ? कभी-कभी स्पष्ट अनुभव होता है कि वह धर्म एक सजीव, सप्राण वस्तु है, जो उपयुक्त आश्रय को पाकर अपनी आभा से समस्त त्रिभुवन को देदीप्यमान कर देती है। कहो तुम मिथ्या कल्पना ! मैं कहूँगा कि यह तब तो वह मिथ्या कल्पना ही परम लालसा और स्पृहा की वस्तु है। यदि वह सचमुच ही मिथ्या कल्पना हो, तो उसका अभाव जीवन के रथ को लंगड़ा बना देता है, जो चिरकाल से सत्य और मिथ्या के दो पहियों पर चलता आया है।

पंचतत्वों से बना हुआ शरीर जितनी यातना सह सकता है, उतनी गुरु तेगबहादुर ने अद्भुत धीरता के साथ सही। परन्तु आखिर उसकी भी सीमा आ गई। शरीर का कष्ट जब असह्य हो उठा, तब गुरु ने अपने को बलिदान कर देने का उपाय सोचा। औरंगजेब ने उन्हें जीवित रख कर स्वधर्म से डिगा देने के मनसूबे बाँध रखे थे; गुरु ने अडिग रह कर शरीर त्याग देने का निश्चय किया।

औरंगजेब के कान में बात पहुँची कि गुरु तेगबहादुर चमत्कार दिखा सकते हैं। औरंगजेब ने गुरु से पूछा और कहा

कि वे चमत्कार दिखा देंगे, तो उन्हें मुक्त कर दिया जायेगा।

गुरु ने स्वीकार कर लिया। चमत्कार वे ऐसा दिखायेंगे, जैसा किसी ने न दिखाया होगा और न किसी ने देखा होगा। वे कटा हुआ सिर जोड़ कर मुर्दे को फिर से जिला कर दिखलायेंगे।

अगर गुरु सचमुच ऐसा करके दिखा दें, तब तो औरंगजेब उनका अनुयायी तक बनने को तैयार था। पर सिर किसका काटा जाये ?

बहुत सोच-विचार की क्या आवश्यकता ? यदि और कोई तैयार नहीं होता, तो गुरु स्वयं अपना सिर कटवा कर उसे जोड़ कर दिखायेंगे। इससे बड़ा चमत्कार क्या हो सकता है ?

चमत्कार के पूर्व गुरु ने कागज का एक छोटा-सा मुड़ा हुआ पुर्जा दिया; और कहा कि सिर कटने के बाद इसे तीन बार लाश के पास खड़े होकर पढ़ा जाये; सिर फिर जुड़ जायेगा।

और इसके बाद वे लेट गये। जल्लाद ने तलवार के एक ही सधे हुए वार से सिर धड़ से अलग कर दिया। उसके बाद पर्चा खोलकर पढ़ा गया। औरंगजेब पर जैसे बिजली गिर पड़ी। पर्चे पर लिखा था: "सिर दिया, पर सर न दिया।"

इससे बड़ा चमत्कार दुबारा सिर जोड़ कर भी नहीं दिखाया जा सकता था। न चाहते हुए भी औरंगजेब के मुंह से तीन बार यह वाक्य निकला; "सिर दिया, पर सर न दिया!"

विवश औरंगजेब ने यही सोचकर सन्तोष किया कि

चलो काफिर मारा गया । और अपनी खीझ उतारने के लिए उसने आज्ञा दी कि गुरु की लाश की अन्त्येष्टि न करने दी जाये ।

लाश लाल किले के सामने खुले मैदान में पटक दी गयी और उसे कोई ले न जाये, इस लिए नंगी तलवारों का पहरा लगा दिया गया ।

परन्तु अविचलित गुरु के बलिदान ने हिन्दुओं और सिखों के अन्दर एक ऐसी जान फूँक दी, जिसके कारण लाल किला शताब्दियों तक कांपता रहा ।

५.

ऋषि दयानन्द

२९ सितम्बर की रात को सोने से पूर्व नित्य नियम के अनुसार स्वामी जी ने गर्म दूध मंगवा कर पिया। थोड़ी देर पीछे पेट में पीड़ा शुरू हुई और जी मिचलाने लगा। रात को कई बार वमन हुआ; परन्तु स्वामी जी ने किसी को सूचना न दी। अगले दिन प्रातःकाल निर्बलता के कारण देर से उठे और भ्रमण के लिए न जा सके। घर की वायु-शुद्धि के लिए उन्होंने हवन करवाया। उनकी दशा धीरे-धीरे और बिगड़ने लगी। पेट दर्द, पेचिश तथा वमन अधिकाधिक होने लगे। पहले स्वामी जी के भक्त श्री सूर्यमल जी ने इलाज प्रारम्भ किया; पर बाद में जोधपुर दरबार की ओर से डा० अलीमर्दान खाँ का इलाज प्रारम्भ हुआ। इस इलाज से कुछ लाभ नहीं हुआ; दशा बिगड़ती ही गई। डाक्टरों की सम्मति थी कि स्वामी जी को ज़हर दिया गया है।

जब स्वामी जी की बीमारी का समाचार अजमेर पहुँचा, तो वहां से कई आर्य सज्जन जोधपुर पहुंचे और इलाज की

सुविधा के लिए आबू पहाड़ पर चलने का अनुरोध किया। स्वामी जी आबू चले आये। आबू में भी कुछ लाभ होता दिखाई न पड़ा, तो स्वामी जी के शिष्य उन्हें अजमेर ले आये। इस यात्रा में स्वामी जी को काफी कष्ट हुआ। पर लगता है कि विष का प्रभाव बहुत दूर तक हो चुका था; अतः चिकित्सा तथा सेवा से कुछ भी लाभ होता नहीं दीखता था।

उस समय रात के तीन बजे थे। अक्टूबर का अन्त था। लोगों को सर्दी मालूम देती थी, पर स्वामी जी के मुँह से केवल "गर्मी-गर्मी" का शब्द निकलता था। कोठी के सब दरवाजे खुलवा दिये गये; तब भी स्वामी जी को शान्ति अनुभव न हुई। दूसरे दिन डा० लक्ष्मणदास का इलाज शुरू हुआ। पर उनकी दशा में अन्तर न हुआ। एक बार स्वामी जी ने अपने प्रेमी जनों से कहा : "हमको मसूदा ले चलो।" इस पर सभी ने कहा : "आराम होने पर आपको वहां पहुंचा देंगे। पर अभी इस दशा में बार-बार यात्रा करना ठीक नहीं है।" इस पर स्वामी जी ने कहा : "दो दिन में हमको पूरा आराम पड़ जायेगा।"

अब स्वामी जी के सारे शरीर में छाले ही छाले दीखने लगे। २६ अक्टूबर को स्वामी जी का शरीर अत्यन्त निर्बल हो गया। अपने सेवकों से कहा : "हमको बिठा दो।" जब बिठाया गया, तो कहा : "हमें छोड़ दो। सहारे की आवश्यकता नहीं है।" तब वह कितनी ही देर तक बिना सहारे बैठे रहे। उस समय सांस जल्दी-जल्दी चल रहा था, पर स्वामी जी उसे

रोककर बल से बाहर फेंक देते थे। वह ईश्वर के ध्यान में मग्न थे।

रात को कष्ट अधिक रहा। दूसरे दिन ३० अक्टूबर को डा० न्यूमैन को बुलाया गया। डा० न्यूमैन स्वामी जी की दशा को देखकर चकित हो रहे। उन्होंने कहा : "हमने ऐसा दूसरा कोई दृढ़चित्त व्यक्ति नहीं देखा, जिसे इतनी पीड़ा हो रही हो और वह फिर भी तनिक भी न कराह रहा हो।" उस समय स्वामी जी के कंठ में कफ की अधिकता थी। उसकी शान्ति के लिए डा० न्यूमैन ने कई उपाय किये, पर कोई लाभ न हुआ।

दिन के ग्यारह बजे स्वामी जो का श्वास विशेष बढ़ने लगा। उन्होंने कहा : "हम शौच जायेंगे।" उस समय स्वामी जी को चार आदमियों ने उठाया और शौच करने की चौकी पर बिठा दिया। शौच गये; पानी लिया; और उसके बाद उन्हें फिर पलंग पर बिठा दिया गया। कुछ देर बैठे रहे; फिर लेट गये। श्वास बड़े वेग से चलता था और ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामी जी श्वास को रोककर ईश्वर का ध्यान करते हैं। उस समय स्वामी जी से पूछा गया : "कहिये महाराज, अब आपकी तबीयत कैसी है ?" कहने लगे : "अच्छी है। एक मास के पीछे आज का दिन आराम का है।"

इस समय लाला जीवनदास जी ने, जो लाहौर से स्वामी जी को देखने के लिए आये थे, स्वामी जी के अभिमुख होकर पूछा : "महाराज इस समय कहां हैं ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया : "ईश्वरेच्छा में।"

उस समय स्वामी जी के मुख पर किसी प्रकार का शोक या

घबराहट प्रतीत नहीं होती थी। ऐसी वीरता के साथ दुःख को सहन करते थे कि मुँह से "हाय" या शोक का एक भी शब्द नहीं निकलता था। इसी प्रकार स्वामी जी को बातचीत करते पाँच बज गये। इस समय लोगों ने स्वामी जी से पूछा : "कहिये, अब आपकी तबीयत का क्या हाल है ?" तो कहने लगे : "अच्छा है। तेज और अन्धकार का भाव है।" इस बात को लोग कुछ न समझ सके, क्योंकि स्वामी जी इस समय सरल बातचीत कर रहे थे। साढ़े पाँच बजे का समय आया, तो लोगों से स्वामी जी ने कहा : "अब सब आर्य जनों को, जो हमारे साथ और दूर-दूर देशों से आये हैं, बुला लो और हमारे पीछे खड़ा कर दो। कोई सम्मुख खड़ा न हो।" यही किया गया।

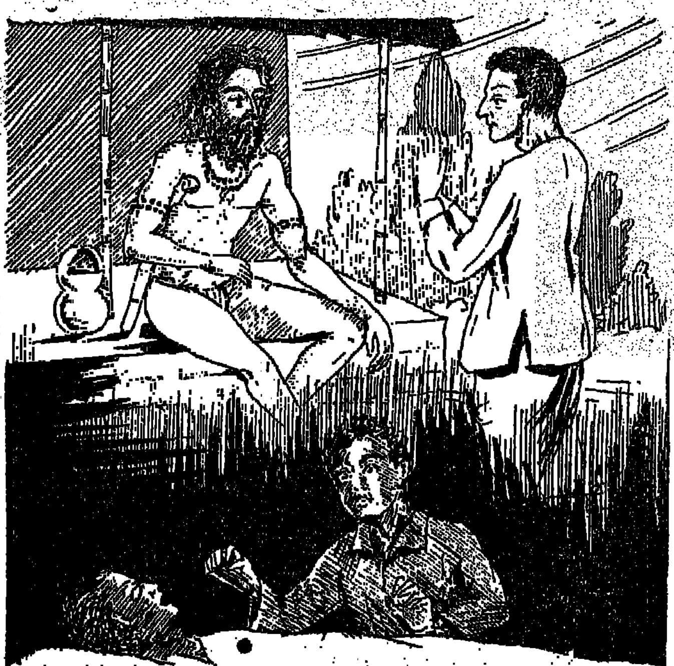
जब सब लोग स्वामी जी के पास आ गये, तब उन्होंने कहा : "चारों ओर के द्वार खुलवा दो।" ऊपर की छत के दो छोटे-छोटे रोशनदान भी खुलवा दिये। इस समय उदयपुराधीश के आदेशानुसार श्री विष्णुलाल मोहनलाल पंड्या भी आ गये थे। तब स्वामी जी ने पूछा : "आज कौन सा पक्ष, क्या तिथि और क्या वार है ?" किसी ने कहा : "कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की सन्धि, अमावस्या और मंगलवार है।" यह सुन कर स्वामी जी ने कोठी की छत और दीवारों की ओर दृष्टि की; फिर पहले वेदमंत्र पढ़े, तत्पश्चात् संस्कृत में कुछ उपासना की। फिर हिन्दी भाषा में ईश्वर के गुणों का कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। तत्पश्चात् हर्ष और प्रसन्नता के साथ समाधि में मुंदे

हुए नयन खोलकर कहने लगे : "हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा, तूने अच्छी लीला की।" बस इतना कहकर स्वामी जी महाराज ने, जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं एक करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक कर एक बार ही बाहर निकाल दिया।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द का निर्वाण हुआ, जिसने अज्ञान और अन्धविश्वास के अन्धकार में भटकते हुए भारत को उन्नति का सही मार्ग दिखाया; और जिनकी शिक्षाओं को उनके बाद उनके विरोधियों ने भी अपना लिया।

खण्ड ३

कल्याण-पथ



१. कटे हाथ
२. जनता का न्याय
३. सांप का काटा
४. भूत की भेंट
५. पैसा और इलाज

१.

कटे हाथ

"इस जरा सी शीशी की कीमत पच्चीस रुपये !" कहते-कहते लाला चम्पतलाल की आँखें कपार पर चढ़ गयीं।

दूकानदार बहुत शान्त और भद्र प्रकृति का व्यक्ति था। बोला : "यह दवाई हमारी अपनी तैयार की हुई है। एक आविष्कारक को बीस हजार रुपया देकर पेटेंट खरीदा है। यह उसके बीस साल के परिश्रम का फल है। सांप के काटने की ऐसी अच्छी दवा बाजार में कोई है ही नहीं। यह उस मनुष्य को जीवन प्रदान करती है, जो इसके अभाव में निश्चित रूप से मर जायेगा। क्या जीवन का मूल्य पच्चीस रुपये अधिक है ?"

"परन्तु आप किसी रोगी से उसके जीवन का मूल्य रुपये के रूप में नहीं ले सकते। व्यापारिक सिद्धान्त के अनुसार आप अपनी तैयार की हुई वस्तु पर लागत के अतिरिक्त कुछ और निश्चित मुनाफा ले सकते हैं। अधिक से अधिक पचास प्रतिशत।"

दूकानदार का स्वर अब भी शान्त ही रहा; बोला : "व्यापारिक सिद्धान्त के अनुसार हम इसका मूल्य पचास रुपये भी रख सकते हैं; क्योंकि पचास रुपये मूल्य होने पर भी इसके खरीदारों की कमी नहीं होगी। इस समय भी हमारे पास इसकी इतनी अधिक मांग है कि हम उसे किसी भी तरह पूरा करने में असमर्थ हैं। पर हमने अपनी लागत के हिसाब से ही इसका दाम रखा है। इसमें हमें नफा अवश्य है, पर वह उतना नहीं, जितना कि आपने उचित बताया है। हमें इसमें केवल २५ प्रतिशत नफा है। एक शीशी पर हमें ६। रु० बचते हैं। पर हमारी बिक्री इतनी ज्यादा है कि हमें इतना नफा भी सन्तोषजनक प्रतीत होता है।"

"इस शीशी पर आपको सिर्फ ६। रु० बचते हैं, यह मानने की बात नहीं है।"

"यह तभी तक, जब तक कि आपको यह मालूम नहीं है कि यह दवाई किस प्रकार बनती है। इसके लिए हमें जिन्दा जहरीले सांप खरीदने पड़ते हैं और सांप की कीमत औसतन दस रुपये देनी पड़ती है। फिर, जो लोग इन ज़हरीले सांपों का ज़हर निकालते हैं और उससे दवाई बनाते हैं, उन्हें बहुत मोटी तनख्वाह देनी पड़ती है; क्योंकि वे बहुत बड़ा खतरा उठाते हैं। जरा-सी असावधानी उनके प्राण ले सकती है। जितना मैंने कहा है, उतना खर्च हमें पड़ जाता है। यदि कल हमें यह २० रुपये शीशी के हिसाब से बेचनी पड़े, तो हम बेच ही नहीं सकते।"

लाला चम्पतलाल कुछ सन्तुष्ट दिखाई नहीं पड़े। फिर

भी उन्होंने पच्चीस रुपये देकर एक शीशी ली और दूकान से बाहर निकल आये। इस समय उनके दिमाग में दूकानदार के सिर्फ ये ही शब्द घूम रहे थे : "यदि यह हमें बीस रुपये में बेचनी पड़े, तो हम बेच ही नहीं सकते।" बाकी सारा वार्तालाप उनके मन-पटल पर से धुल-पुंछकर साफ हो गया था। पच्चीस रुपये और बीस रुपये! बीस रुपये, पच्चीस रुपये!

× × ×

"नहीं, अभी यह ठीक नहीं बना।" लाला चम्पतलाल एक प्रेस में बैठे उसके मैनेजर से कह रहे थे : "देखिये, इस शीशी के मेल की हूबहू वैसी ही शीशी कारीगरों ने बना कर दी है; और आप हूबहू वैसा लेबल नहीं छाप सकते!"

"यह लेबल बिलकुल असली जैसा ही है, लालाजी।"

"तब आप अभी कच्चे मैनेजर हैं। आप तो प्रेस का काम खूब अच्छी तरह जानते हैं; और मैं तो बिलकुल इस लाइन से अनजान हूँ; पर मुझ तक को यह साफ दिखाई दे रहा है कि ये दोनों लेबल एक जैसे नहीं हैं। मुझे लेबल बिलकुल एक जैसा चाहिये। जरा भी फर्क होने से मेरा काम नहीं चलेगा।"

"इस तरह के कामों में यही तो झंझट है। यह ठीक नहीं, वह ठीक नहीं। कल दिन भर दो आदमी इस पर लगे रहे और आप अब भी कह रहे हैं कि ठीक नहीं।"

"मैनेजर साहब, पैसा हराम से नहीं कमाया जाता। खून-पसीना एक करने पर मिलता है। इस लेबल की छपाई के और किसी से आपको पांच रुपये मिलते; मैं दे रहा हूँ पूरे पचास।

पांच और पचास में कुछ फर्क है या नहीं ?"

"जितनी नुक्ताचीनी आप कर रहे हैं, उसे देखते हुए तो पाँच रुपये वाला काम ही भला मालूम होता है।"

"मैं इस नुक्ताचीनी के लिए ही पांच के पचास दे रहा हूँ। अगर दोनों लेबलों में बाल बराबर भी फर्क रह गया, तो वह मेरे किसी काम का नहीं। मैं इस कबाड़ के लिए आपको पचास रुपये देने वाला नहीं हूँ।"

"यह कबाड़ है ? इतना अच्छा तो छपा हुआ है !"

"भाई मेरे, मुझे अच्छा नहीं चाहिये। जैसा वह लेबल है, मुझे ठीक वैसा चाहिये। अगर वह मैला है, तो मैला चाहिये और अगर वह फटा हुआ है, तो फटा हुआ चाहिये। अगर आपको नामंजूर हो, तो आप अब भी मना कर सकते हैं।"

नामंजूर मैनेजर को भी नहीं था। उसने मशीन मैन को बुलाया और स्याही का रंग बदल कर लाने को कहा।

कुछ देर बाद जब मशीन मैन नया लेबल छाप कर लाया, तो थोड़ी देर तक तो लाला चम्पतलाल उसे गौर से देखते रहे; और अन्त में बोले : "अब तो ठीक ही मालूम पड़ता है। पांच सात लेबल छाप कर मुझे दे दो; बाकी छपवा कर रख दो। मैं कल मंगवा लूंगा।"

× × ×

"कैसा रहा ? सब ठीक हो गया ?" लाला चम्पतलाल ने पूछा। एक पतला-दुबला गरीब सा दीख पड़ने वाला व्यक्ति उनके सामने कुर्सी पर बैठा हुआ था। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की चमक दिखाई पड़ रही थी।

वह बोला : "मैं उस दूकान पर गया, तो बड़े मालिक वहां नहीं थे। दूसरे आदमी से मैंने कहा कि महाराज, यह शीशी तो मैं ले गया था; पर बदकिस्मती से मरीज मेरे पहुँचने से पहले ही मर चुका था। डाक्टर ने कहा कि अब इसे दवाई देना बेकार है। दुनिया की कोई भी दवाई मरे को जिन्दा नहीं कर सकती। इसीलिए इस दवाई का इस्तेमाल नहीं हो सका। ज्यों की त्यों लौटा लाया हूँ। मैं गरीब आदमी हूं। आप तो इसे फिर भी बेच लेंगे, पर मेरे लिए पच्चीस रुपये बड़ी रकम है। अगर आप इस दवाई को लौटा लें, तो आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।"

"तो वह क्या बोले ?"

"वह बोले कि हम इस तरह दवाई वापस नहीं लिया करते। पर अभी थोड़ी देर में बड़े मालिक आये जाते हैं, उनसे और कह देखना। अगर वह कह देंगे, तो वापस ले ली जायेगी।

"थोड़ी देर में बड़े मालिक आ गये। उनसे भी मैंने वही बात कही। सुनकर बोले : 'भाई इस तरह बिकी हुई दवाई वापस लेना असूल के खिलाफ है।'

"मैंने हाथ जोड़ कर और गिड़गिड़ा कर कहा : "आपकी बात ठीक है महाराज, पर मैं बहुत ही गरीब आदमी हूं।' इस पर वह बोले : 'अगर तुम सचमुच ही इतने गरीब हो, तो बीस रुपये हम से यों ही ले जाओ।'

"एक बार को तो मेरा मुँह बन्द हो गया। पर तुरन्त ही

वह फिर बोले; 'क्यों भाई, इसकी यह शीशी वापस कर लें, तो क्या हर्ज है ?'

"दूकान के आदमी ने कहा : 'हर्ज कुछ भी नहीं है। आप जैसा कहें।'

'अच्छा, इस बेचारे की शीशी वापस कर लो।' उन्होंने कहा; और शीशी के उन्होंने मुझे अट्ठारह रुपये बारह आने वापस कर दिये। मुझे तो आदमी भले ही मालूम हुए।"

"भले नहीं, बेवकूफ ! इतनी ही अक्ल लेकर व्यापार करने चले हैं। ऐसे आदमी को तो साधु बन कर बन में निकल जाना चाहिये। खैर, उन्होंने मेरा रास्ता आसान कर दिया है। भगवान् उनका भला करे ! क्या नाम ढूँढ कर रखा है 'सर्प संजीवनी।' अब से 'सर्प संजीवनी' उनकी नहीं बिकेगी, मेरी बिकेगी।"

लाला चम्पतलाल की सर्प संजीवनी खूब बिकी। आदमी का भाग्य इसी प्रकार चमकता है। लक्ष्मी की कृपा मनुष्य पर इसी प्रकार होती है। सोने की खान मिल जाने पर भी रुपया शायद इतनी जल्दी नहीं जोड़ा जा सकता, जितनी जल्दी लाला चम्पतलाल ने जोड़ लिया था। और रुपया जोड़ पाने का रहस्य उन्होंने अपने सिवा और किसी को नहीं बताया था।

लाला चम्पतलाल अपने आपको "सर्प संजीवनी" के निर्माताओं का एजेंट बताते थे और उन्हीं की ओर से लोगों से 'सर्प संजीवनी' के आर्डर बुक करते थे। इन आर्डर देने वालों को वह असली सर्प संजीवनी देने के बजाय अपनी बनायी हुई सर्प संजीवनी भेज देते थे। असली सर्प संजीवनी के निर्मा-

ताओं ने भारी धनराशि व्यय करके उस दवाई की उपयोगिता सब जगह प्रख्यात कर दी थी; इसलिए लाला चम्पतलाल को अन्धाधुन्ध आर्डर मिल जाते थे और लाला चम्पतलाल का अपना अनुमान था कि वह जो शीशी सर्प संजीवनी के नाम से अट्ठारह रुपये में बेचते थे, उसकी लागत कुल चार आने बैठती थी।

उनकी दवाई की शीशी में असली दवाई की शीशी से रत्ती भर भी अन्तर नहीं था और वह सदा अपने ही माल को असली बताते थे।

× × ×

लाला चम्पतलाल का पुत्र वीरेन्द्र कालेज में पढ़ता था। उसे अपने पिता का इस विधि से धन कमाना बिल्कुल पसन्द नहीं था। पर जब अपने खर्च के लिए व्यक्ति किसी दूसरे पर निर्भर होता है, तो उसमें अपने आदर्शों के लिए लड़ने का उतना दम नहीं रह जाता। फिर भी कभी-कभी इस बात को लेकर बाप-बेटे में कहा-सुनी हो जाती थी; कारण कि यौवन आदर्शों के प्रति अधिक अनुरागशील होता है। स्वार्थ और कुटिलता तो उसे जीवन की आवश्यकताएं सिखाती हैं।

कभी वीरेन्द्र कहता : "आप इस नकली दवाई का निर्माण बन्द कर दीजिये। आप नहीं जानते कि यह कितना भयंकर काम है। आदमी यह समझ कर आपकी बनाई हुई सर्प संजी-वनी खरीदता है कि यह उसके मृत्यु के मुख में पड़े हुए किसी इष्ट व्यक्ति के प्राण बचायेगी। सर्प संजीवनी अपने लाभ-दायक गुणों के लिए इतनी प्रसिद्ध हो गई है कि उस प्राण-

संकट के समय कोई भी इस दवाई के सिवा कोई और दवाई लेना नहीं चाहता। इतना विश्वास करके खरीदी हुई दवाई भी जब धोखा दे जाये, तब मनुष्य के मन की क्या दशा हो जायेगी, यह सोच पाना सरल नहीं है। आप अट्ठारह रुपये में यह दवा बेचकर उस मनुष्य के प्राण ले लेते हैं।"

वीरेन्द्र के इस वक्तव्य को लाला चम्पतलाल ने बिल्कुल पसन्द नहीं किया। ताना कसते हुए वह बोले : "जब मांगने भर से मुट्ठी भर रुपये मिल जाते हैं, तभी इस तरह की फिरे दिमाग की बातें सूझती हैं। जब खुद रुपया कमाना पड़ेगा, तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। रुपया कमाना कोई हँसी-खेल नहीं है। हजार आदमियों की आँखों में धूल झोंकनी पड़ती है, तब चार पैसे हाथ में आते हैं। कोई भी आदमी आसानी से मूर्ख बनने को तैयार नहीं होता।"

"पर यह अनैतिक है। आपके इस व्यापार से आदमी की सीधी जान जाती है। उस व्यक्ति के प्राण बचा पाने का अन्तिम अवसर तक हाथ से जाता रहता है।"

"यह सिर्फ बकवास है। मैं किसी को नहीं मारता। मारना-जिलाना भगवान् के हाथ है। तुम आजकल के छोकरे पढ़-लिख कर नास्तिक हो गये हो, जो यह समझते हो कि भगवान् की इच्छा के बिना संसार में कोई भी कुछ भी कर सकता है। मार वही सकता है, जो जिला सकता है।"

इस बात का क्या उत्तर है? उत्तर शायद दिया भी जा सके; पर जिसे अगले दिन सबेरे फिर जेब-खर्च के लिए पैसे माँगने हैं, उसके लिए उत्तर दे पाना बहुत ही मुश्किल है।

लाला चम्पतलाल ने कभी आशा न की थी कि वीरेन्द्र कभी इस बात का उत्तर दे पायेगा; पर किस्मत को जैसा मंजूर था, वीरेन्द्र ने इस बात का ऐसा उत्तर दिया, जिसे भूल पाना असम्भव था।

× × ×

दुर्घटना इस प्रकार हुई कि कालेज के विद्यार्थियों की एक टोली शहर से बाहर नदी के किनारे पिकनिक के लिए गयी। उस टोली में वीरेन्द्र भी था। नदी छोटी-सी थी, पर पानी उसमें तैरने के लिए पर्याप्त था। सब लोग उत्साह के साथ नदी में नहाते और तैरते रहे। फिर होड़ लगाकर वे उसके दूसरे पार गये। इस स्पर्धा में वीरेन्द्र औरों से बाजी ले गया। पार जाकर ये लोग कुछ देर नदी की बालू में लेटे रहे। उसके बाद वापस इस पार आते हुए इन लोगों में फिर होड़ लग गयी। इस बार वीरेन्द्र पिछड़ गया। पहली बार की सफलता का रंग लाने के लिए उसने आग्रह किया कि इस बार लोग ऊपर नदी के प्रवाह की ओर चलें और वहां से तेजी से तैर कर आने की प्रतियोगिता रहे।

इन्कार किसी ने नहीं किया। सब लोग धीरे-धीरे प्रवाह के ऊपर की ओर चलने लगे। अभी मुश्किल से वे एक फलांग गये होंगे कि एक जोरदार फुंकार ने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। एक काले रंग का फनियर अपना फन उठाये उनकी ओर डरावनी मुद्रा से देख रहा था और फुंकार रहा था। विद्यार्थियों ने इसे भी मनोरंजन का एक साधन समझा।

उससे डरकर भागने के बजाय वे उसी की ओर बढ़े।

पर सांप कुछ भली मुद्रा में नहीं था। या तो वह किसी से छेड़ा हुआ वहां बैठा था, या फिर उसकी नागिन आसपास ही कहीं थी। वह उत्तेजित था और आक्रमण का अवसर देख रहा था। ज्योंही ये लोग उसके पास पहुंचे, त्योंही वह तेजी का लपका और जो युवक उसके सबसे निकट था, उसके पैर में लिपट गया और अपने जहरीले दांत उसके पाँव में गड़ा दिये। यह वीरेन्द्र था। सांप के इस प्रकार काटने से सब साथी आतंकित हो गये और यह आतंक इतना रहा कि जब सांप काटकर भाग खड़ा हुआ, तो उसे मारने के लिए किसी का भी हाथ नहीं उठा। सांप बिना चोट खाये भाग गया।

सांप के भाग जाने पर युवकों को होश आया और वे वीरेन्द्र को उठाकर तेजी से शहर की ओर लपके। वीरेन्द्र इस समय तक भय के मारे अचेत-सा होने लगा था। कहते हैं कि सांप के विष से भी अधिक घातक प्रभाव सांप के भय का होता है।

जब वे लोग अचेत वीरेन्द्र को लेकर उसके घर पहुंचे, तो उस समय लाला चम्पतलाल घर पर ही थे। सब कुछ सुनकर उनका चेहरा पीला पड़ गया। वीरेन्द्र की मां फूट-फूटकर रोने लगी। चम्पतलाल खुद डाक्टर को बुलाने के लिए लपके।

डाक्टर जल्दी ही आ गया। उस समय तक वीरेन्द्र की नाड़ी चल रही थी और दिल धड़क रहा था। डाक्टर ने कहा: "अभी पूरी आशा है। 'सर्प संजीवनी' बाजार से मंगवा लीजिये। सांप काटे की वही एक अचूक दवा है।"

वीरेन्द्र की माँ बोली : "सर्प संजीवनी तो घर में ही बहुत-सी पड़ी है।"

डाक्टर ने कहा : "हां, एक बात का ध्यान रखियेगा कि आजकल यह दवा बाजार में नकली भी बिक रही है। दवाई की असली शीशी ही आनी चाहिये। अगर कहीं धोखे से नकली शीशी आगयी, तो फिर कुछ नहीं किया जा सकेगा। जल्दी कीजिये; इस समय एक-एक क्षण मूल्यवान है।"

लाला चम्पतलाल को जीते जी कोल्हू में पीस दिया जाता, तो शायद उनको इतना कष्ट न होता, जितना कि इस समय हो रहा था। अब वह बाजार में जाकर किस शीशी पर भरोसा कर सकते हैं कि उसमें असली दवाई होगी। खुद उन्होंने ही तो सब दूकानों पर असली के नाम से नकली शीशियां रखवायी हुई थीं। इस समय असली और नकली शीशियों में क्या भेद किया जा सकता था, जबकि उन्होंने अपनी सारी चतुराई उनके भेद को मिटाने में लगा दी थी। फिर भी अब देर नहीं की जा सकती थी : डाक्टर कह रहा था कि इस समय एक-एक क्षण बहुत मूल्यवान है। बहुत ही बेचैन होकर वे घर से निकल पड़े।

घर से निकलते ही उन्हें खयाल आया कि सीधे उसी दूकान पर चलना चाहिये, जिस पर उन्हें मालूम था कि असली दवाई मिल सकती है; क्योंकि वही असली सर्प संजीवनी के निर्माता थे। यह खयाल आते ही वह मोटर में बैठकर उस दूकान की ओर चले। रास्ते में उनके मन में यह बात सौ बार आई कि इस समय मैं उसी व्यक्ति के सामने भीख माँगने

जा रहा हूं, जिसके व्यापार को मैंने भारी ठेस पहुंचायी है। यह वह जानते थे कि उनके काम से इन लोगों के व्यापार को अवश्य नुकसान पहुंचा होगा; पर यह उन्हें मालूम नहीं था कि यह नुकसान कितना है।

मोटर दूकान के सामने पहुंचते ही उतर कर वह तेजी से अन्दर गये और बोले : "एक शीशी सर्प-सञ्जीवनी की दे दीजिये। जरा जल्दी कर दीजिये; मरीज मर रहा है।"

दूकानदार इस प्रकार घबराये हुए ग्राहकों को देखने के अभ्यस्त हो चुके थे। अतः उन्होंने लाला चम्पतलाल की घबराहट की परवाह नहीं की। पर जो उत्तर उन्होंने दिया, उसकी लाला चम्पतलाल ने सपने में भी कल्पना न की थी :

"सर्प-संजीवनी तो हम कई महीने से नहीं बना रहे हैं। बाजार में नकली सर्प-संजीवनी बड़े परिमाण में आ रही है, और उसका दाम इतना कम है कि हम अपनी दवाई का दाम उतना नहीं रख सकते। हमने पुलिस को इस बात की सूचना दे दी है; और कई महीने से खुद दवाई का निर्माण बन्द कर दिया है। पिछली बनी हुई जो शीशियां रखी थीं, वे इन पिछले महीनों में धीरे-धीरे बिक कर खत्म हो गयीं। नयी तब बनेंगी, जब पुलिस की खोज से यह मालूम हो जायेगा कि नकली सर्प-संजीवनी कौन बना रहा है। जांचने पर पता चला है कि इन नकली दवाई की शीशियों में नमकीन पानी भरा होता है; उसकी शीशी, लेबल और पेकिंग हमारी शीशी से बिलकुल मिलते हैं।"

"आपके यहां एक भी शीशी नहीं है? देखिये, शायद

कोई एकाध बची पड़ी हो।"

"मैं देख चुका हूँ। एक शीशी बची थी; वह भी तीन सप्ताह हुए एक प्रोफेसर ले गये थे। उस समय अच्छी तरह खोज कर ली थी। और कोई शीशी इस समय नहीं है।"

लाला चम्पतलाल का चेहरा घबराहट से काला पड़ गया और वह बाहर निकल आये। जब इन निर्माताओं ने ही सर्प संजीवनी का निर्माण बन्द कर दिया है, तो अब वह किस दूकान पर असली दवाई पाने की आशा कर सकते हैं। और इस दवा की सारी जिम्मेदारी खुद उन पर है। उनके हृदय में इस समय हजार बिच्छुओं के एक साथ डंसने की सी यन्त्रणा हो रही थी। पर अब कोई और रास्ता नहीं था।

वह चुपचाप घर लौट आये। रास्ते में एक दूकान से उन्होंने खुद वही शीशी खरीदी, जिसे वह अच्छी तरह जानते थे कि वह उन्हीं की तैयार की हुई नकली दवाई है। घर लौट कर उन्होंने चुपचाप वह शीशी डाक्टर के हाथ में दे दी। डाक्टर ने शीशी तोड़ कर दवाई सीरिंज में भरी और इंजेक्शन कर दिया। उसके बाद कुछ देर तक टूटी हुई खाली शीशी को हाथ में लेकर देखता रहा। अन्त में बोला : "इस दवाई की असली और नक़ली शीशी में भेद कर पाना बिलकुल असम्भव है।"

वीरेन्द्र की दशा में सुधार का कोई चिह्न दिखाई न पड़ा। नाड़ी लगातार क्षीण ही होती चली गयी और दिल की धड़कन भी अब कठिनाई से अनुभव होने लगी। स्पष्ट था कि मृत्यु निकट से निकटतर आती जा रही है। डाक्टर

अपनी असफलता पर आवरण डालने के लिए बोला : "इसी दवाई से मैंने कम से कम दस मरते रोगियों को बचाया है। असल में मारना-जिलाना तो भगवान के हाथ में है; हम लोग तो निमित्त मात्र बन जाते हैं।"

अब तक हृदय पर पत्थर रख कर लाला चम्पतलाल सब कुछ सुनते रहे थे; पर अब उनका धैर्य टूट गया। वह बोले; "डाक्टर साहब, यह बात सही है कि मारना जिलाना भगवान के हाथ में है। और मेरा विश्वास है कि भगवान ने मेरे बेटे को जिलाने के लिए अपने हाथ बढ़ाये थे; पर मैंने खुद ही उन हाथों को काट डाला है।"

डाक्टर उनकी बात को न समझ सकने के कारण निरुत्तर उनके मुँह की ओर देखता रह गया। शोक के आवेग में लाला चम्पतलाल का हिताहित ज्ञान जाता रहा था; अपने आपको रोक रखना उनके लिए असम्भव हो गया था। आँखों से अविरल अश्रु बरसाते हुए वह बोले : "मैं ही वह अपराधी हूँ, जिसके कारण असली सर्प संजीवनी का मिलना असंभव हो गया है। मुझे अपने अपराध का उचित ही दंड भुगतना पड़ रहा है।"

"तो क्या आप ही नकली सर्प संजीवनी बनाते थे?", डाक्टर ने चौंककर पूछा।

लाला चम्पतलाल का स्वीकृति-सूचक सिर हिलते ही डाक्टर का हृदय उनके प्रति अपार घृणा से भर उठा; और वह बिना किसी प्रकार का अभिवादन किये कमरे से बाहर निकल गया।

२.

जनता का न्याय

सन्तान के प्रति मनुष्य का अनुराग कितना तीव्र होता है, यह या तो तब पता चलता है कि जब किसी मनुष्य के सन्तान हो ही नहीं; या फिर तब, जब कि सन्तान सदा के लिए जाती रहे। तब पता चलता है कि मनुष्य किस प्रकार अपने प्राण देकर भी अपनी सन्तान को जीवित और सुखी देखना चाहता है। जब तक बच्चे छोटे रहते हैं, तब तक माँ-बाप का अनुराग उनके प्रति अधिक निःस्वार्थ, पवित्र और प्रचंड होता है। वे अपने बच्चे की भोली सूरत देख-देखकर उस पर बलि जाते हैं; और उसकी एक-एक मुस्कान के लिए स्वयं हजार कष्ट सहने को तैयार रहते हैं।

उस दिन जब गोपाल की एकमात्र लड़की सरोज घर नहीं लौटी, तो उसके माँ-बाप ने उसकी खोज में जमीन आसमान एक कर दिये। चार साल की यह बच्ची रोज की ही तरह आज भी खेलने निकल गई थी। दोपहर के समय भी वह भोजन के समय नहीं आई। पर उस समय तो "कहीं खेल

में लगी होगी", "अब आती होगी" इत्यादि बातें सोचकर उतनी चिन्ता नहीं की गई थी। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसकी माँ की चिन्ता बढ़ती गई। वह उसे खोजने निकली। शाम के समय जब गोपाल घर लौटा, तब तक भी "बच्ची खो गई है" के अतिरिक्त माँ के पास कहने को और कुछ नहीं था। "हमने तो नहीं देखा", "आज तो वह इस ओर नहीं आई"; इसी प्रकार के उत्तर लोगों ने दिये, जैसे सबने आपस में मिलकर षड्यन्त्र कर लिया हो। यह भी कभी सम्भव है कि बच्ची खेलने के लिए निकली हो और सबेरे से उसे किसी ने देखा ही न हो।

गोपाल ने इतने उत्साह के साथ सरोज की खोज प्रारम्भ की कि जैसे बस पन्द्रह-बीस मिनट में ही उसे खोज निकालेगा। परन्तु अपनी इस खोज के दौरान में उसे सरोज का तो निशान तक दिखाई नहीं दिया; हां, लोगों के मुख से तरह-तरह की आशंकाएं, कल्पनाएं और सच्ची-झूठी कहानियां अवश्य सुनने को मिलीं। एक आदमी ने अखबार में छपी हुई एक खबर का हवाला दिया कि आजकल इस ओर बच्चों को भगाने वाला एक गिरोह आया हुआ है। वे लोग अपने पास एक बोरी रखते हैं और जहां कहीं किसी बच्चे को अकेला देखते हैं, उसे झट से बोरी में बन्द कर लेते हैं और फिर उसे बोझ की तरह पीठ पर लटका कर ले जाते हैं। किसी को जरा सा शक तक नहीं हो पाता। हो न हो, यह उन्हीं लोगों की करतूत है।

बच्चे उड़ाने वाला गिरोह! सुनकर गोपाल के माथे पर पसीने की बूंदें झलक आईं। उसकी बच्ची सरोज बहुत ही

सुन्दर थी। उसका गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें और रेशम जैसे बारीक बाल उसकी माता के अभिमान की वस्तु थे। अपनी बिटिया के सौंदर्य को देखकर वह उसी प्रकार गर्वित हो उठती थी, जैसे अपने ही रूप को दर्पण में देख रही हो।

ये बच्चे चुराने वाले लोग बच्चों को दूर के नगरों में ले जाकर बेच देते हैं। जिन लोगों के अपनी संतान नहीं होती, वे काफी पैसा देकर इन बच्चों को खरीद लेते हैं। उसकी बच्ची को भी इसी तरह कहीं बेचा जायेगा; और इसके साथ ही गोपाल यह सोचे बिना न रह सका कि बेचने पर उन बदमाशों को सरोज के बहुत अच्छे पैसे मिल जायेंगे। और इस विचार के साथ ही उसके मस्तिष्क में आग सी लग उठी। यदि किसी तरह वह उस व्यक्ति को पकड़ पाये, जो सरोज को उठा कर ले गया है, तो बिना सोचे एकदम उस पर पिल पड़े और गला घोंट कर उसका दम ही निकाल दे।

एक दूसरे व्यक्ति ने कुछ और ही कहानी सुनाई, जिससे गोपाल का मन बैठने सा लगा। यह व्यक्ति हाल ही में शहर में आया था। कहने लगा : "शहर में बड़े चौराहे के पास वह बहुत बड़ा शाही होटल है न, उस पर पुलिस ने ताला डाल दिया है।"

गोपाल उसके मुँह की ओर देखता रह गया। क्षण भर रुक कर सुनाने वाला बोला : "सुनते थे कि पहले जमाने में राक्षस होते थे। पर अब इस जमाने में भी होने लगे हैं। आदमी इस हद तक गिर सकता है, यह सोचना भी मुश्किल है! पर यह है बिलकुल सच।"

राक्षस कहां पर दिखाई पड़े, और आदमी के पतन का कौन-सा नया रिकार्ड कायम हो गया है, इस उत्सुकता ने गोपाल को अधीर कर दिया। क्षण भर के लिए उसे सरोज का भी ध्यान जाता रहा। बोला : "क्या बात हुई ?"

"एक आदमी शाही होटल में भोजन करने गया था। वहां उसने कीमे की एक प्लेट मांगी। खाते-खाते उसकी दृष्टि एकाएक प्लेट में पड़े हुए एक सफेद पदार्थ पर जाकर अटक गई। ध्यान से देखने पर यह नाखून समेत अंगुली का अग्रभाग निकला, जो किसी बच्चे का मालूम होता था। मांस में बच्चे की अंगुली देखकर उस ग्राहक का मन संदेह और घृणा से काला हो उठा। उस प्लेट पर रूमाल ढककर वह उठ खड़ा हुआ। "कुछ आवश्यक कागज कहीं पुस्तकालय में या पोस्ट आफिस के काउंटर पर भूल आया हूं और उन्हें लेकर अभी पांच मिनट में आता हूं; फिर भोजन करूंगा" यह बहाना करके वह बाहर निकल गया। कोई दस मिनट बाद वह पुलिस के साथ लौटा। पुलिस को उसने प्लेट में पड़ी हुई नाखून समेत अंगुली दिखाई। पुलिस ने सारे होटल की तलाशी ली, तो एक बन्द अंधेरे कमरे में से बीसियों बच्चों की हड्डियां मिलीं। पुलिस ने तुरन्त होटल चलाने वालों को गिरफ्तार कर लिया और होटल पर ताला डाल दिया। होटल पर ताला पड़ा हुआ है, यह मैं स्वयं अपनी आँखों से देख आया हूं।"

अन्तिम वाक्य सुनाने वाले ने इस प्रकार आत्मविश्वास के साथ कहा कि जैसे वह न केवल होटल पर पड़ा हुआ ताला देखकर आया है, बल्कि इस सारी घटना को अपनी आँखों के

सामने होता देखकर आया है। गोपाल की मानसिक दशा ऐसी नहीं थी कि वह इस घटना के सत्यासत्य का विवेचन कर सकता। उसे यह बात सच ही जान पड़ी। आखिर आये दिन जो इतने सारे बच्चे चुराये जाते हैं, उनका और क्या उपयोग किया जाता होगा?

जब वह बहुत रात गये असफल और दुश्चिन्ताओं के बोझ से दबा हुआ घर लौटा, तब उसकी इच्छा यह हो रही थी कि वह खूब जोर से चिल्ला-चिल्ला कर रोये। पर घर पहुँच कर उसने देखा कि उसकी पत्नी उससे पहले ही रो रही थी। उसे रोते देखकर वह खुद न रो सका; और न उसे वे सब कहानियां ही अपनी पत्नी को सुनाने का साहस हुआ, जो उसने लालबुझक्कड़ों से सुनी थीं। वह तरह-तरह की आशाप्रद बातें कहकर अपनी पत्नी को आश्वस्त करने का प्रयत्न करने लगा।

पति-पत्नी की रात जागते-जागते ही बीत गई। पत्नी रोती रही और पति उसे सान्त्वना देने की चेष्टा करता रहा, जब कि उसका अपना मन रोने का हो उठता था। रात के अन्तिम भाग में शायद उन्हें कुछ झपकी आ गई थी। सवेरे के समय जब दरवाजे के बाहर से किसी ने गोपाल को आवाज दी, तो वे दोनों हड़बड़ा कर उठ बैठे और दोनों के मन में पहला विचार यही आया कि हो न हो, यह व्यक्ति सरोज को लेकर ही आया है; तभी इतने सवेरे आवाज दे रहा है। गोपाल ने जल्दी से उठकर दरवाजा खोला। सामने पड़ोस के हरि बाबू खड़े थे। नित्य प्रातःकाल उठकर दूर तक घूमने जाया

करते थे; बोले : "भाई गोपाल, कल शाम सुना कि सरोज खो गई। उसका कुछ पता चला या नहीं ? मैं तो रात ही आने वाला था, पर फिर बहुत देर हो जाने के कारण नहीं आ सका।"

गोपाल कुछ देर तक तो उनके मुँह की ओर अवाक् देखता रहा; फिर कुछ देर बाद सचेत सा होकर बोला : "जी नहीं। अभी तक तो कुछ पता नहीं चला।" यह कहकर वापस लौटने ही लगा था कि हरि बाबू कहने लगे : "समझ नहीं आया कि आखिर हुआ क्या ! बच्चों की भी कोई न कोई मुसीबत लगी ही रहती है। पर आखिर वह गई कहाँ ? इस बारे में अक्ल कुछ काम ही नहीं करती।"

अक्ल गोपाल की भी काम नहीं कर रही थी, अतः वह चुप ही रहा। थोड़ी देर तक चुप खड़े रहने के बाद हरि बाबू "अच्छा, देखो, भगवान सब भला ही करेंगे" कहते हुए आगे चल पड़े और गोपाल दरवाजा बन्द करके वापस लौट आया।

× × ×

दिन भर गोपाल ने फिर बड़ी दौड़-धूप की; पर शाम तक भी इसके सिवाय और कोई फल न निकला कि कस्बे के हर आदमी को मालूम हो गया कि उसकी लड़की खो गई है, और सब मां-बाप अपने-अपने बालकों के विषय में खूब साव-धान हो गये। रास्ते में एक जगह उसने सुना कि एक मां अपनी लड़की को डांट रही थी : "खबरदार, जो घर के बाहर पाँव भी निकाला, तो टांग ही तोड़ दूँगी।" सुनकर गोपाल को कुछ हँसी आने लगी; पर तभी उसे खयाल आया कि

यदि सरोज की मां भी इतनी ही सावधान होती, तो यह इतना झंझट खड़ा न होता।

सरोज के खो जाने से छोटे से कस्बे में कुछ आतंक सा तो फैल ही गया था, शाम होते-होते एक और अफ़वाह फैली। रेलवे स्टेशन पर दो आदमी पकड़े गये थे; जो, कहा गया कि, दो बच्चों को भगाकर ले जा रहे थे। बच्चों को रोते हुए देख कर एक आदमी को कुछ सन्देह हो गया और उसने पुलिस को बुलाकर उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। कहा जा रहा था कि बच्चे पूरब के जिलों से लाये जा रहे थे और वे किन्हीं धनी परिवारों के थे।

इस अफ़वाह के फैलते ही थाने के बाहर काफ़ी भीड़ जमा हो गई। थाने के अन्दर जा कर इस विषय में पूछताछ करने की हिम्मत किसी ने नहीं की; या आवश्यकता ही नहीं समझी। निकम्मे और कुतूहलप्रिय लोग थाने के दरवाजे के बाहर खड़े-खड़े दूर से हो कोठरियों में बन्द दीखने वाले लोगों के विषय में मनगढ़न्त बातें बना-बनाकर कह रहे थे। जब कोई नवागन्तुक आकर इस भीड़ में शामिल होता और भीड़ के एकत्र होने का कारण पूछता, तो एक रहस्य का सा वातावरण छा जाता; और कोई भी मुँह खोलकर कुछ कहने को तैयार न होता।

लड़के चुराने वाले लोग पकड़े गये हैं, यह सुनकर गोपाल भी थाने की ओर लपका। अन्य लोगों की तरह वह बाहर ही खड़ा नहीं रह गया। सरोज के गुम हो जाने की रिपोर्ट लिखाने के लिए वह थाने गया था; और यह मामला ताजा

होने के कारण थाने के सभी सिपाहियों को उसका किस्सा मालूम था। वह सीधा अन्दर चला गया और एक सिपाही से, जो उसे अच्छी तरह जानता था, पूछा : "वे बच्चे चुराने वाले लोग किस ओर रखे गये हैं ?"

उसकी बच्ची के खो जाने के विषय में तो सिपाही को मालूम था, पर इन बच्चे चुराने वाले लोगों के विषय में कुछ भी मालूम नहीं था। उसने पूछा : "कौन से बच्चे चुराने वाले लोग ?"

"वही जो अभी स्टेशन पर पकड़े गये हैं।"

"स्टेशन पर बच्चे चुराने वाले लोग तो कोई नहीं पकड़े गये।"

"पर मैंने सुना है कि स्टेशन पर दो आदमी बच्चों को चुराकर ले जाते हुए पकड़े गये हैं। उन्हीं के मारे तो यह बाहर इतनी भीड़ जमा है।"

सिपाही कुछ हैरान रह गया; बोला : "स्टेशन पर दो आदमी पकड़े जरूर गये हैं, और उनके साथ दो बच्चे भी थे। पर वे लोग तो इसलिए पकड़े गये हैं कि वे चोरी से छिपा कर अफीम ले जा रहे थे। बच्चे चुराने का तो सवाल ही नहीं।"

गोपाल ने कहा : "यार तुम्हें ठीक खबर नहीं है। वे लोग बच्चों को चुराकर ले जा रहे थे; इसीलिए पकड़े गये हैं।" यह कहता हुआ वह सिपाही को वहीं छोड़ अन्दर थानेदार के कमरे की ओर चल दिया।

थानेदार अपने कमरे में दो-तीन सिपाहियों के साथ गप-

शप में व्यस्त था। गोपाल को उसने देखकर भी नहीं देखा। इससे गोपाल का उत्साह बिलकुल बुझ-सा गया; फिर भी इतनी दूर आकर बिना कुछ कहे चुपचाप लौट जाना भी बुरा लगता था; अतः थानेदार के पास पहुँचकर अवसर देखकर उसने पूछा : "क्यों साहब, मेरी लड़की का कुछ पता चला ?"

थानेदार ने उसकी ओर क्षण भर तक गौर से देखा और उसके बाद बेफिक्री के स्वर में बोला : "लड़की तुम्हारी है। पहले तुम्हें पता चलेगा; उसके बाद हमें मालूम होगा।"

गोपाल मुँह लटकाये थाने से बाहर निकल आया। उसमें इतना भी उत्साह न रहा कि थाने के बाहर खड़े हुए लोगों के भ्रम का तो निवारण करदे। दो-एक परिचित लोगों ने उससे कुछ पूछा भी, तो वह उनको टालमटोल उत्तर देकर घर की ओर चल पड़ा। वह बेचैन था और एकान्त में विश्राम करना चाहता था।

× × ×

एक दिन और बीत गया; और सरोज नहीं मिली। गोपाल ने सरोज के न मिलने का संवाद इतने स्थानों पर और इतनी बार सुनाया कि जैसे सारे कस्बे में बस एक यही बात ऐसी है, जिस पर लोगों का जीवन-मरण निर्भर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बात गोपाल के लिए बहुत बड़ी थी। कस्बे में ऐसी घटना लोगों की अपनी स्मृति में यह पहली ही थी; इसलिए जहां गोपाल इसे खूब बड़ा बनाकर कहता था, वहां लोगों के हृदय पर भी इसका गहरा असर पड़ता था।

रास्ते में उसे चौधरी छोटेलाल मिले। बहुत ही परेशान नजर आ रहे थे। उसे देखकर जैसे उन्हें कुछ धैर्य हुआ; बोले : "सवेरे से ढूंढ रहा हूँ। रामू कहीं मिल ही नहीं रहा।" रामू उनके लड़के का नाम था। मनुष्य का स्वभाव है कि दुःख में किसी और को साथी पाकर उसका कष्ट कुछ कम होने लगता है। गोपाल ने ऊपर से तो काफी चिन्ता व्यक्त की, पर मन ही मन उसे अस्पष्ट अनुभूति यह हुई कि यदि इसी प्रकार बीस-पच्चीस आदमियों के बालक और खो जायें, तो शायद उसे सरोज के खो जाने का दुःख बहुत ही कम अनुभव होगा। काफी देर तक वे दोनों एक दूसरे के दुःख में हिस्सा बँटाते हुए इधर-उधर फिरते रहे, जैसे अपने खोये हुए बच्चों को ढूँढ रहे हों। कोई एक घंटे बाद घुणाक्षर न्याय से छोटेलाल को रामू दिखाई पड़ गया। वह कहीं से कच्चे अमरूद तोड़ कर ला रहा था। इनमें से कुछ बहुमूल्य फल उसके कुर्ते की जेब में भरे हुए थे और जैसे बाहर निकलने की चेष्टा कर रहे थे। एक अमरूद को हाथ में लिये वह कुतरता हुआ चला आ रहा था। छोटेलाल का गुस्सा उसे देखते ही भभक उठा। चटाचट तीन-चार चांटे लगाकर उन्होंने सबेरे से उसे ढूँढते फिरने की अपनी मजदूरी वसूल कर ली। गोपाल को लगा कि यह बुरा हुआ कि छोटेलाल की मुसीबत तो समाप्त हो गई, और उसका अपना कष्ट ज्यों का त्यों बना रह गया। पर इस परिस्थिति को चुपचाप सह लेने के सिवाय और कोई उपाय नहीं था।

× × ×

बच्चों की हालत बच्चों के माँ-बापों से भी बुरी थी। चुराये

जाने का भूत उन पर बुरी तरह से सवार हुआ था। किसी जरा से अजनबी को देखकर वे चट से भाग खड़े होते। कोई साधुओं के वेश वाला व्यक्ति, कोई बाल और दाढ़ी बढ़ाये वृद्ध, अथवा कोई बनजारा दीख पड़ता, तो वे चट छिपने का प्रयत्न करते। आज सवेरे भी ऐसा ही हुआ। कस्बे के बाहरी छोर पर कुछ बच्चे मिल कर खेल रहे थे। यह जगह बस्ती से कोई सौ गज दूर होगी। तभी एकाएक एक बालक ने किलकारी मारी, और 'वह आया बच्चेमार' कहकर वह दम छोड़कर भाग खड़ा हुआ। दूसरे बालकों ने भी जब मुड़कर देखा, तो एक बनजारों का वेश पहने, दाढ़ी-मूंछ बढ़ाये, बहुत ही मैले-कुचैले कपड़े पहने एक आदमी दीख पड़ा। अगर बच्चे चुराने वाले आदमी का कोई कल्पित चित्र तैयार किया जाये, तो वह ठीक उस व्यक्ति का ही होगा। उसे देखते ही और सब बच्चे भी 'बाप रे' 'पकड़ा रे' चिल्लाते हुए भाग खड़े हुए। जब भय के मारे चिल्लाता और घिघियाता हुआ यह दल बस्ती के पास पहुँचा, तो दो-एक बड़े आदमियों की निगाह इन पर पड़ी। कारण पूछने पर उन्होंने बिना सन्देह के, सच-सच बता दिया कि एक बच्चे पकड़ने वाला आदमी उन्हें पकड़ने के लिए आ रहा था। अगर वे भाग न खड़े होते, तो वह अवश्य उनमें से दो-तीन को पकड़ कर बोरी में बन्द कर लेता। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि "वह आदमी मुझ पर झपटा भी था।" इस बात से शायद वीरत्व टपकता था; अतः स्पर्धा में एक और बोला : "मेरा तो उसने हाथ भी पकड़ लिया था। वह तो मैं जैसे-तैसे छुड़ाकर भाग निकला, नहीं तो न जाने क्या होता!"

बालक का हाथ पकड़ लिया, यह बात सुनकर दो-एक व्यक्तियों को जोश आ गया। आखिर देखें तो, वह बदमाश है कौन? तीन-चार आदमी उत्साहित होकर उस ओर चले। बच्चों का दल अतिरंजित वर्णन करता हुआ साथ-साथ चला। भीड़ में अपने आप बढ़ने की एक विचित्र शक्ति होती है। जब ये लोग उस बनजारे-से दीख पड़ने वाले व्यक्ति के पास पहुंचे, तो इनकी संख्या बीस से अधिक हो गई थी। कुछ बालक इस मजेदार बात को सुनाने के लिए इस झुंड से अलग हो लिये थे और उन्होंने न जाने किस तरह इतनी जल्दी यह समाचार सब ओर फैला दिया कि आखिर आज एक बच्चे चुराने वाला आदमी पकड़ा ही गया। इस आदमी के बारे में जिसने भी सुना, वही कुतूहल से खिचकर उस ओर को लपक पड़ा।

"क्यों रे क्या बात थी? तू भागा था इस लड़के के पीछे?" एक उत्साही युवक ने उस बनजारे के पास पहुंचकर कहा। वह व्यक्ति कुछ तन्मय-सा होकर उस समय भूमि पर कुछ जड़ी-बूटी-सी ढूंढ रहा था। इस प्रश्न को सुनकर उसने सिर उठाकर ऊपर की ओर देखा और देखता ही रह गया। प्रश्न का उसने कोई भी उत्तर न दिया।

इतनी धृष्टता! एक तो लड़के को पकड़ने की चेष्टा की, और अब पूछने पर जवाब तक नहीं देता। सारे जनसमुदाय में क्रोध की लहर दौड़ गई। और भी तेज आवाज में उसी युवक ने पूछा: "जवाब क्यों नहीं देता? जल्दी जवाब दे।"

तभी किसी उर्वर मस्तिष्क ने सुझाया: "बन रहा है

बदमाश। पीटो साले को।"

"मार के आगे तो भूत भी भागते हैं, फिर यह तो बेचारा है ही क्या चीज़!" किसी और ने दंड शास्त्र का विशदीकरण किया। पर एकाएक किसी पर हाथ छोड़ते हिन्दुस्तान का सामान्य नागरिक बहुत विचार करता है। अतः अपराधी के मुँह से कुछ न कुछ उत्तेजनात्मक बात कहलवा कर अपने आप को पहले हाथ छोड़ने लायक उत्तेजित दशा में लाया जाता है। उसी की भूमिका के रूप में एक और पहलवान से दीखने वाले युवक ने कहा : "सीधी तरह जवाब देता है या नहीं ?"

पर उस आदमी को जैसे इन आदमियों की धमकी की रत्ती भर भी परवाह नहीं। उसने एक बार और सिर उठाकर देखा और फिर अपनी बूटियां ढूंढने में लग गया। जन समुदाय ने इसमें अपना अपमान अनुभव किया। भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही थी; उसका क्रोध भी ज्यामितिक अनुपात में बढ़ता जा रहा था। एक ने कहा : "अगर यह दोषी न होता, तो उत्तर क्यों न देता ? जरूर इसने बच्चों को पकड़ने की कोशिश की थी; और अब पकड़ा गया है, तो जवाब देते नहीं बनता।"

एक और बोला : "जवाब क्या दे ? क्या कहे, कि मैं लड़के पकड़ने आया था ? वह चुप है; इससे बढ़कर जवाब और क्या हो सकता है ?"

तमाशबीनों का धैर्य समाप्त होता जा रहा था। अन्त में पहलवान से दीख पड़ने वाले युवक ने अंतिम चेतावनी के साथ

उसकी गर्दन पर हाथ रखते हुए कहा : "क्यों, जवाब देगा या नहीं ?"

जवाब तो उसने नहीं दिया, पर गर्दन पर हाथ रखा जाते ही वह तुरन्त तमक कर खड़ा हो गया; और इस तरह देखने लगा, जैसे इन लोगों ने उसके साथ कोई बहुत ही अनधिकार चेष्टा की हो। उसकी उस मुद्रा को देखकर लोगों को हँसी आने लगी। पर बच्चे अवश्य डर गये। उसकी मुद्रा से स्पष्ट था कि वह इन लोगों के हाथो सीधी तरह दंड लेने को तैयार नहीं था। यदि आवश्यकता पड़ी, तो अवश्य प्रतिरोध करेगा। इन बनजारों के पास क्या-क्या हथियार होते हैं, इस सम्भावना ने एक बार भीड़ के नायकों का उत्साह मन्द कर दिया। पर अगर वह व्यक्ति निरपराध है, तो साफ कह क्यों नहीं देता ? उस समय सारी भीड़ मन ही मन इस बात पर समझौता करने को तैयार हो गई, कि अगर यह आदमी एक बार यह कह दे कि मेरा कोई कसूर नही है, तो उसे छोड़ दिया जाये। पर वह व्यक्ति शायद इतना करने में भी अपमान अनुभव करता था, अतः वह मुँह से कुछ भी नहीं कह रहा था। पर उसकी आँखें कह रही थीं कि "खबरदार, अगर तुमने हाथ लगाया, तो अच्छा न होगा।"

लेकिन भीड़ अपना अपमान नहीं सह सकती। इस आदमी को अपनी कुछ न कुछ सफाई देनी ही होगी। अगर यह सफाई न देगा, तो दड सहना ही पड़ेगा। एक प्रतिभाशाली ने, जो भीड़ में काफी पीछे खड़ा तमाशा देख रहा था, कहा : "अच्छा चोरी और सीनाजोरी! लगाओ साले के

दो घूँसे; देखें, फिर कैसे नहीं बोलता।"

उसके कथन का अभीष्ट परिणाम हुआ। जो पहलवान इतनी देर से अपने आपको वश में रखे था, अब धैर्य न रख सका और उसने उस बनजारे को जोर से एक घूँसा मारा। घूँसा लगते ही बनजारा भी उससे चिपट गया; और फिर तो सारी भीड़, जैसे भी हो सका, उस पर पिल पड़ी और अपना गुस्सा उतार कर आनन्द लेने लगी।

बनजारे को लोगों ने बहुत पीटा। पर इससे भी उनका सन्तोष न हुआ। उसे अपनी सफाई देनी चाहिये। आखिर इसने बालकों के पकड़ने की कोशिश क्यों की थी? भीड़ पर एक जिद सवार हो गई। आखिर यह जवाब क्यों नहीं देता? या तो यह साबित करे कि यह लड़के भगाने वाला नहीं है; अन्यथा आज इसकी खैर नहीं है। बनजारे के दुर्भाग्य से उसी समय सब कुछ सुन कर कहीं से गोपाल भी आ पहुँचा। बनजारे के अटूट मौन को देखकर उस अकेले का ही गुस्सा सारी भीड़ के गुस्से से अधिक हो उठा। भीड़ में आगे घुसकर वह बोला: "बोलेगा तो यह सौ बार! या तो यह बोलेगा, नहीं तो हम इसे जिन्दा जला देंगे।" उसके मन में उस समय गुम हुई सरोज का ध्यान था और कुछ ऐसा भी आभास था कि जैसे सरोज को इन लोगों ने किसी होटल को बेच दिया है, जहां लोग उसे काट-पका कर खा गये हैं। इसलिए उसके क्रोध की सीमा नहीं थी।

उसके मुँह से निकलते ही बात को भीड़ ने पकड़ लिया था। "जला दो साले को! इसके लिए यही उचित दंड है। या तो बोले, या जल जाये।"

और उन उन्मत्त लोगों ने उसे सचमुच ही पकड़ कर पेड़ से लटका दिया। बटोर-बटोर कर पेड़ के नीचे बहुत सा घास-फूस और पत्ते जमा कर दिये।

इस समय उस बनजारे की आँखों में क्रुद्ध प्रतिरोध का भाव नहीं था, बल्कि एक निरपराध पीड़ित व्यक्ति का उलाहना और घृणा का भाव व्यक्त हो रहा था। पर अब उसकी आँखों की ओर देखकर उसका मनोभाव जानने का अवकाश था किसे? अब वह उनका परास्त प्रतिद्वन्द्वी था और यदि वह क्षमा चाहता था, तो उसके लिए केवल एक ही शर्त थी कि वह गिड़गिड़ा कर अपनी निरपराधिता का प्रमाण उपस्थित करे। आखिरी बार बिलकुल स्पष्ट शब्दों में यह बात उसे बता भी दी गई। पर अपने हठ पर वह भी अडिग दिखाई पड़ता था। बारम्बार धमकाने, डराने और छोड़ देने का प्रलोभन देने पर भी उसके होठों से एक बार भी अपनी सफाई के बारे में एक भी शब्द नहीं निकला।

एक! दो!! तीन!! और नीचे रखे हुए घास-फूस के ढेर में उन्होंने आग लगा दी। भीड़ जब उत्तेजित होती है, तब उसमें विवेक तो रहता ही नहीं, हृदय भी नहीं रहता। देखते-देखते आग की लपटों में झुलस कर वह बेहोश हो गया। जिस रस्सी में बंधा हुआ वह लटक रहा था, वह जलकर टूट

गई और वह जलती हुई आग में गिर पड़ा।

और तभी जैसे भीड़ को अपने दुष्कृत्य का भान हुआ। उन्हें ऐसा कर डालने का कोई अधिकार न था! वे लोग अभी तितर-बितर होने का उपक्रम कर ही रहे थे, कि तभी एक और बनजारा भागता हुआ वहां आ पहुँचा। शायद उसने कहीं सुन लिया था कि यहां क्या कुछ हो रहा है। वहां आ कर उसने उस अभागे को आग की लपटों में पड़ कर जलते हुए देखा। जलते हुए मांस की बदबू हवा में भर रही थी। देख कर उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। उसके बाद सारी भीड़ को धिक्कारता हुआ सा वह बोला : "यह तो मेरा भाई था। जन्म से ही गूंगा और बहरा था।"

सुन कर सारी भीड़ पर जैसे वज्र गिर पड़ा। पश्चात्ताप से अधिक भय का भाव लोगों के मन में जगा। वे नरहत्या के अपराधी थे। शरद् ऋतु के बादल की तरह सारी भीड़ देखते-देखते विलीन हो गई।

जब गोपाल घबराया और हांफता हुआ घर पहुँचा, तो उसकी पत्नी हाथ में एक कार्ड लिये बैठी थी। उसका चेहरा कमल की तरह खिला हुआ था। कार्ड गोपाल के साले के यहां से आया था। उसने लिखा था कि सरोज उसके पास है। किसी तरह की चिन्ता न करें।

गोपाल की पत्नी का यह भाई कुछ दिन पहले इस कस्बे से होता हुआ अपनी पत्नी को लेने गया था। अब उसने पत्र में लिखा था कि वापस लौटते समय सरोज उसे

रास्ते में खेलती हुई मिल गई थी। उसकी मामी लाड़ में उसे अपने साथ लेती गई। जल्दी में रुक कर गोपाल को खबर देना संभव न हुआ।

कार्ड को पढ़ कर गोपाल का चेहरा काला पड़ गया। वह अपना सिर दोनों हाथों पर रख कर बैठ गया, मानों उस पर सौ मन का बोझ रखा हुआ हो।

३.

सांप का काटा

कुंजडे की छोटी-सी दूकान के आगे छोटा-सा जमघट लगा था। भय, उत्सुकता और बेबसी से वायुमंडल भारी हो रहा था।

"मर गया ?" सपेरे ने पूछा।

"हाँ, मर गया। दोपहर को दो बजे के करीब काटा था।"

"दो बजे ? तो अभी तो कुल पाँच ही घंटे हुए हैं। अभी मरा-जिया क्या कहा जा सकता है ! आठ पहर तक तो आशा रखनी चाहिये।" एक ने कहा।

"आठ पहर की बात तो रहने दो। ऐसे-ऐसे नाग दुनियां में हैं, जो घंटे भर में आदमी को गलाकर पानी कर दें। यही देखो।" कहकर उसने चट से अपनी पिटारी का ढकना उठा दिया, जिसके उठाते ही एक काजल सा काला गोखुरा फनियर फुंकार मारता हुआ फन उठाकर खड़ा हो गया। सांझ का प्रकाश धुंधला पड़ता जा रहा था। उस बढ़ते हुए अंधेरे में उस विष के देवता की फुंकार सुनते ही सब उपस्थित श्रोताओं

की देह में सनसनी दौड़ गयी। इस प्रकार सबको आतंकित और प्रभावित करके पिटारी का ढक्कन बन्द करते हुए गर्व के साथ सपेरे ने फिर दुहराया : "आठ पहर तो बहुत होते हैं; आठ घड़ी बीत जायें, तो बड़ी बात समझो। पर हाँ, मर कैसे गया ? कोई इलाज नहीं करवाया था ?"

"इलाज ? इलाज क्या करवाना था···" इसके बाद वक्ता की भाषा ने बिलकुल नई शैली पकड़ी; और शब्द-शब्द पर अवाच्य, गंदी गालियां देते हुए उसने कहा : "पहले तो उस··· बंगाली डाक्टर के पास ले गये। उस···ने कहा कि मेरे पास इसका इलाज नहीं है। इसे अस्पताल ले जाओ। फिर अस्पताल ले गये। अस्पताल का कोई डाक्टर सो रहा था। जगाने पर उसने कहा कि मेरी ड्यूटी नहीं है। जिस···की ड्यूटी थी, वह बाज़ार से कुछ सामान लेने गया था। तब दूसरे अस्पताल ले गये। वहाँ डाक्टर था, पर दवाई नहीं थी। दवाई के सुए लगते हैं, वे अस्पताल में नहीं थे; और···अस्पताल खोलकर बैठे हैं। सरकार से पांच हज़ार रुपये साल की मदद लेते हैं। तीसरे अस्पताल में भी डाक्टर नहीं मिला, तो कम्पाउंडर की ही मिन्नत करके उससे सुआ लगवाया। पर फिर भी उससे कुछ हुआ हुआया नहीं।"

"ओफ ओह ! जमाना कितना बदल गया है ! सांप के काटे के इलाज के लिए डाक्टर नींद से जागा नहीं ? एक वह भी समय था, जब सांप के काटे की खबर सुनकर इलाज करने वाला बिना गये रह नहीं सकता था। मैं खुद ऐसे ही गुरु का चेला हूं।" क्षण भर के लिए सपेरा रुका।

अंधेरा बढ़ रहा था। कुंजड़े ने दियासलाई रगड़ कर मिट्टी के तेल की ढिबरी में छुआ दी, जिसकी धुंआ देती हुई शिखा अन्धकार को हटाने का अधूरा सा प्रयत्न करने लगी। सपेरे ने अपने जिस गुरु का संकेत किया था, उसके बारे में लोगों की उत्सुकता दुर्निवार हो उठी।

सपेरा कहने लगा : "मेरे गुरु हम लोगों की तरह नहीं थे। सिवाय घुटनों तक जोगिया धोती के और कोई कपड़ा वे नहीं पहनते थे। गले में दो एक रुद्राक्ष की माला और बांह में एक रुद्राक्ष का ही अनन्त सदा बांधे रहते थे। जितना ही अधिक डरावना सांप होता था, उतने ही अधिक चाव से वे उसे पकड़ते थे; और इतनी आसानी से, जैसे पौधे पर से फूल तोड़ रहे हों। दो से ज्यादा सांप कभी उन्होंने अपने पास नहीं रखे। जब कोई नया अच्छा और बढ़िया सांप मिल जाता था, तो पुरानों में से एक को छोड़ देते थे। उन्होंने खुद तो कभी नहीं कहा, पर लोगों की धारणा थी कि उन्होंने तक्षक सिद्ध किया हुआ है। ऐसा भी प्रवाद था कि यदि किसी आदमी को सांप काटकर भाग जाये और मन्त्र द्वारा बुलाने से भी न आये, तो वे अपने वश में किये हुए सांप छोड़कर उस सांप को पकड़वा कर मंगवा सकते थे। इसीलिए वे सदा अच्छे से अच्छे सांप अपने पास रखते थे।

भादों का महीना था। हमनें अपनी सिरकियां और तम्बू थानेसर के पास खड़े किये थे। हमारे दल के और लोग तो दिन में बीन बजाकर सांप का खेल दिखाने शहर और आस-पास के गांवों में जाते थे, पर गुरु महाराज कभी दिखाने

के लिए सांप का खेल नहीं करते थे। थानेसर के आस-पास वन में काला नाग बहुत होता है। गुरु महाराज की इच्छा एक शानदार नाग पकड़ने की थी। कई नाग वहां पकड़े भी, पर वे पसन्द नहीं आये। उनसे अच्छे नाग गुरु महाराज के पास पहले से थे। इसलिए जो नये नाग पकड़े, वे सब छोड़ दिये। एक बार गुरु महाराज ने मुझसे कहा था कि जिन नागों को मैं पकड़ कर छोड़ देता हूं, वे सब मेरे सेवक हो जाते हैं; और जब मैं चाहूं, और जहां चाहूं, वहीं उन्हें बुला सकता हूं।"

अभिभूत से श्रोताओं में से किसी ने कहा: "जरूर बुला सकते होंगे। गुणी आदमी क्या नहीं कर सकते!"

"आखिर गुरु महाराज की इच्छा पूरी हुई। एक घने जंगल में भटकते हुए हमने बड़ी-बड़ी बांबियों का एक झुंड देखा। बांबियों को देखते ही गुरु महाराज ने कहा: 'यहां हमें नाग मिलेगा। तुम सावधान रहना। इस देवता का कोई भरोसा नहीं।' उस दिन गुरु महाराज ने स्वयं बीन बजाई। कोई दस मिनट बीन बजी होगी कि बांबी में से नाग निकला। यों लम्बाई में वह कोई बहुत अधिक लम्बा नहीं था; चार हाथ से कम ही होगा—पर सिर से पूंछ तक ज़हर ही ज़हर! देखते ही कंपकंपी छूटती थी।

अब गुरु महाराज और सांप में होड़ चली। गुरु महाराज बीन के स्वरों पर सांप को नचा रहे थे; और सांप नाच रहा था। अगर सांप थककर फन नीचा करे, तो गुरु महाराज उसे चट पकड़ लें; और अगर गुरु महाराज थककर बीन बजाना बन्द

कर दें, तो वह नाग उन्हें एक ही फुंकार में समाप्त कर दे। और अगर सच पूछा जाये, तो कुछ-कुछ गुरु महाराज हार ही गये थे। लगातार तीन घंटे तक बीन बजी। गुरु महाराज पसीने-पसीने हो गये। उनका दम फूल गया। मामूली नाग दस मिनट में ही थककर हार जाता है, पर यह नाग थकने का नाम ही न लेता था। तब गुरु महाराज ने मुझे बीन बजाने का इशारा किया। मैं सांप को ऐसा एकटक देख रहा था कि पहले गुरु महाराज का संकेत देख ही न सका। पर जब मैंने उनका इशारा समझ लिया, तो मुझे बड़ा डर लगा। नाग को नचाने की जिम्मेदारी मुझे बहुत भारी मालूम हुई। पर हिम्मत करके मैंने बीन बजानी शुरू की। गुरु महाराज ने धीरे-धीरे अपनी बीन बजानी बन्द कर दी और सांप ने उन्हें छोड़कर मेरी ओर रुख कर लिया। पहले मुझे बहुत डर लगा था, पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों मेरी हिम्मत बढ़ती गई। आध घंटे मैंने बीन बजाई। तब लगा कि जैसे नाग थक रहा है। उसके झूमने में सुस्ती आ गई। गुरु महाराज का सारा ध्यान उस पर था; और ज्योंही सांप ने फन जमीन पर रखा, त्योंही गुरु महाराज ने उसे पकड़ लिया।

वैसा नाग मैंने और कहीं नहीं देखा। इस नाग का फन रात में चमकता था। पर पकड़े जाने के बाद वह गुरु महाराज के बिलकुल वश में हो गया। अंधेरा हो जाने पर हम डेरे पर लौटे।

उस दिन की थकान से गुरु महाराज को बड़ा तेज़ बुखार चढ़ आया। हमारे डेरे पर पहुँचने के कुछ ही देर बाद आकाश

भादों की काली घटाओं से भर गया और सारी रात बादल कड़क-कड़ककर मूसलाधार बरसते रहे। अगले दिन भी झड़ी रुकी नहीं। वर्षा के साथ ऐसी ठंडी हवा चलने लगी कि हम लोग सारे दिन तम्बुओं में आग के पास बैठे चाय गरम कर-करके पीते रहे। और करते भी क्या? बरसात बाहर निकलने ही नहीं देती थी।

इसी तरह प्रभात से सन्ध्या हो गई। सांझ होते-होते गुरु महाराज का बुखार कुछ कम हो गया; पर उतरा नहीं। अंधेरा होने पर लालटेन जलाकर हम गुरु महाराज के पास आ बैठे। नये पकड़े हुए नाग और दूसरे सांपों के बारे में कितनी ही तरह की बातें होती रहीं। गुरु महाराज ने यह भी बताया कि यह नया नाग अपार धन का स्वामी है। और यदि हम उस बांबी को खोदें, तो वह धन हमें मिल भी सकता है। पर तब यह नाग हमारे वश में नहीं रहेगा। यह और इसके सब वंशज उस धन को लेने वाले के शत्रु बन जायेंगे। जिसे प्राणों से धन अधिक प्यारा हो, वह ऐसी हिम्मत करे। अन्तिम वाक्य ने धन के प्रति हमारा लोभ बिलकुल समाप्त कर दिया। स्पष्ट था कि बांबी में और भी सांपों से मुकाबला हो सकता है।

गुरु महाराज बीमार और थके हुए थे। उन्हें जल्दी नींद आ गई। उनके सो जाने पर हम लोग अलग हटकर तरह-तरह का वार्तालाप करते रहे। हमारे वार्तालाप सांपों, उनके पकड़ने, खेल दिखाने और सांप काटे का विष उतारने के सम्बन्ध में थे। सांप का विष उतारना उस समय हम में से शायद ही कोई जानता हो; खुद मुझ तक को गुरु महाराज ने बाद में

विष उतारना सिखाया था। पर उस समय प्राय: सभी ने डींगें हांकीं कि हम सांप का जहर उतार सकते हैं। और मजा यह कि सब एक-दूसरे की वस्तुस्थिति को समझते थे। इस प्रकार के मिथ्या आत्मगौरव से भी तो आनन्द प्राप्त होता ही है।

जब रात काफी बढ़ चली, तो बाकी लोग भी सोने की तैयारी करने लगे। सब ने यही इच्छा प्रकट की कि वर्षा जितनी बरसनी है, रात ही में बरस ले और कल सवेरे बादल खुल जायें।

तभी लालटेन हाथ में लिये दो-तीन हड़बड़ाये हुए आदमी हमारे डेरे में आ पहुँचे और कहने लगे कि एक लड़के को सांप ने डंस लिया है। अगर कोई इलाज करना जानता हो, तो अभी चले। रुपया जो कुछ खर्च होगा, उसकी कोई परवाह नहीं; पर लड़का किसी तरह बच जाये।

वे लोग जिस तरह से विनय कर रहे थे, उससे स्पष्ट था कि लड़का किसी को बहुत प्यारा है। रुपये का प्रलोभन भी खासा था। पर सांप काटे का इलाज कौन करे? गुरु महाराज सो रहे थे और बीमार भी थे। पर हमारी धारणा यह बना दी गई थी कि सांप काटे का इलाज जिसे आता है, उसे ऐसी खबर सुनकर बचाने जाना ही चाहिये। फिर भी ऐसी वर्षा और अंधेरी रात में गुरु महाराज को जाना चाहिये या नहीं? इससे हम सोच में पड़ गये। खैर, हमने गुरु महाराज को जगा दिया। पर हमें बड़ा ही अचरज हुआ, जब वे सुनते ही चलने को तैयार हो गये। कोई बाधा उन्होंने मानी ही नहीं। बुखार है; आज नहीं, कल उतर जायेगा; पर सांप के काटे का इलाज

कल नहीं हो सकेगा; और फिर मुझ से कहा : 'सनेहिया, बीन और नागों की पिटारी लेकर तू मेरे साथ चल।'

और हम लोग उस अंधेरी बरसाती रात में उस गांव की ओर चल पड़े, जहां से वे लोग आये थे। चलते-चलते गुरु महाराज ने पूछा : 'सांप देखा था, जिसने काटा ?'

'हाँ महाराज, काला फनियर नाग था।'

गुरु चौंक पड़े; 'काटे कितनी देर हुई ?'

'बस उसे काटा और हम इधर को दौड़े ! दो मील का रास्ता है। कोई आधा घंटा हो गया होगा।'

'तो अब फिर दौड़ो। यह वक्त गंवाने का नहीं है।' और गुरु महाराज दौड़ने लगे। कीचड़ का रास्ता, अंधेरा वैसे; ऊपर से जोर की वर्षा ! पर जब गुरु महाराज दौड़ने लगे, तो हमें भी दौड़ना पड़ा।

× × ×

लड़का बीस-बाईस साल का जवान था। गोरा और भरा हुआ सुन्दर शरीर। ऊपर के होठ के ऊपर नई निकलती हुई मूंछों की श्यामता झलक रही थी।

विष के प्रभाव ने उसकी चेतना हर ली थी। मुँह से झाग निकल रहा था। चारों ओर चिन्तित और उदास लोग बैठे थे।

गुरु महाराज ने पहुँचते ही लड़के की परीक्षा की। नाड़ी देखी, सिर के बाल उखाड़ कर देखे और उसके बाद संतोष की साँस लेकर कहा : 'बच जायेगा। अभी इसकी आयु बाकी है।' और गुरु महाराज के इन शब्दों ने झुके हुए चेहरों पर

प्रसन्नता की कुछ आभा छिटका दी। लगता है कि ये शब्द किसी प्रकार घर के अन्दर तक पहुँच गये और अन्दर से रूप में अप्सरा सी एक लड़की निकल आई; और आकर बेहोश लड़के के पास बैठ गई। यह उस लड़के की बहू थी। वैसी सुन्दरता उसके पहले, या उसके बाद फिर कहीं नहीं देखी। उसके बाल सुनहले थे।

घर गांव के जमींदार का था, पर गांवों में जमींदार के यहाँ भी ऐसा रूप कहीं नहीं होता। वह तो लड़के के रूप का बल था कि वह किसी बड़ी जगह से उसे मोह लाया था।

गुरु महाराज ने कुछ देर सोचा। फिर आध सेर घी मंगाया, रस्सी मंगाई; और तेज चाकू मंगाया। जितनी देर में ये चीजें आयें, उन्होंने नागों की पिटारी खोल दी और बीन बजाकर नये नाग को नचाने का यत्न किया। पर आश्चर्य! बारम्बार यत्न करने पर भी नाग ने फन नहीं उठाया; फुंकार भी नहीं मारी।

तब गुरु ने बीन छोड़ दी। और कहा : 'मृत्यु इस मकान में प्रवेश कर चुकी है। उसी के कारण नाग का तेज क्षीण हो गया है। फिर भी प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है।'

सांप ने पैर में काटा था। काटे से छह अंगुल ऊपर की ओर गुरु महाराज ने रस्सी कसकर बाँध दी और कहा : 'इसका जहरीला खून चूस-चूस कर फेंकना होगा। इसके सिवा और कोई मन्त्र, और कोई बूटी इसकी रक्षा नहीं कर सकती। कौन जहरीला खून चूसेगा?'

वह सुनहले बालों वाली लड़की चट से तैयार हो गई।

उसे लड़के से सचमुच ही बेहद प्यार था। उसका ज़हरीला खून चूसकर वह उसे मृत्यु से बचा ले, इसके लिए वह अधीर जान पड़ती थी। इतनी सुन्दर लड़की, ऐसा खतरनाक काम करे, देखकर मेरी तो छाती कांप उठी।

'पर तुम्हारे दांत तो खराब नहीं हैं ?' गुरु महाराज ने पूछा। और उत्तर में उसने होठ खोलकर दांत दिखा दिये। जैसे मोतियों की कतार की कतार हो। वे सुनहले बाल, वह चेहरा, और वह दाँतों की कतार, जब याद आ जाती है, तभी दिल में छुरी सी चुभ जाती है।

'ठीक है।' कहकर गुरु महाराज ने जहाँ साँप के दो दांतों के निशान थे, वहां चाकू से अच्छा बड़ा चीरा दिया। कुछ नीला-सा खून निकला। 'अब यहाँ से चूस-चूसकर इस बर्तन में थूकती जाओ।'

और पल भर भी बिना हिचके वह लड़की खून चूसने और चूसकर बर्तन में थूकने लगी। चार-पांच मिनट बाद खून आना बन्द हो गया। तब गुरु महाराज ने ऊपर बाँधी हुई रस्सी का बंधन खोल दिया। दो एक बार और चूसने के बाद खून स्वयं बहने लगा। लड़के की चेतना लौटने लगी। ज्योंही उसकी दांती खुली, त्योंही गुरु महाराज ने उसे घी पिला दिया, जिसे उसने काफी देर बाद कै में उलट दिया।

पर इतने में लड़की बोली कि मुझे चक्कर आ रहा है और नशा सा चढ़ रहा है। गुरु महाराज का चेहरा फक पड़ गया। मुझे ऐसा लगा, जैसे किसी ने मेरी छाती में हथौड़ा

मार दिया हो। साफ था कि लड़की पर सांप का ज़हर असर कर रहा था। बाद में देखने पर पता चला कि लड़की के मुँह के अन्दर कुछ छाले थे, जो हाल ही में फूटे थे। उनमें होकर साँप का विष रक्त में प्रविष्ट हो गया था।

'मैंने कहा था कि मृत्यु इस मकान में प्रविष्ट हो चुकी है। अब इस लड़की के प्राण नहीं बच सकते। इसका विष चूसा जाने का भी कोई उपाय नहीं है।' गुरु महाराज ने कहा।

'कोई मंत्र-तंत्र ?' लोगों ने विनय की।

'यहाँ कोई काम न देगा' और गुरु महाराज की आँखों में आँसू झलक आये। एक ओर उनकी सफलता और दूसरी ओर भाग्य का व्यंग। इस चीज पर उनका कुछ जोर नहीं था; पर उन्हें ऐसा लग रहा था, जैसे उनके कारण ही लड़की के प्राण जा रहे हों।

वही हुआ। लड़का बच गया, पर लड़की को नहीं बचाया जा सका। वह बेचारी हमारे देखते-देखते मर गई।

चलते वक्त जमींदार पाँच सौ रुपये देने लगा, पर लड़की की मृत्यु से गुरु महाराज का मन इतना भारी हो गया था कि उन्होंने रुपये लेने से इनकार कर दिया।

फिर बाद में सुना कि बहू के शोक में अच्छे हुए लड़के ने रेल की पटरी पर लेटकर आत्महत्या कर ली।"

सपेरे का भावावेश से तरंगित स्वर जब एकाएक रुक गया, तो सब श्रोता जैसे स्वप्न में से जाग उठे।

एक ने जैसे जादू के नशे को तोड़ते हुए कहा : "अजी यह सब क़िस्मत का खेल है। इलाज करने पर भी मर जाता है; बिना इलाज किये भी बच जाता है। पर इलाज हो जाये, तो मर जाने पर भी घर वालों को तसल्ली रहती है।"

४.

भूत की भेंट

वह दुर्घटना बहुत ही करुणाजनक थी। परिहास का परिणाम इतना भयंकर हो सकता है, यह किसी ने सोचा नहीं था। फिर भी वह परिणाम बहुत स्वाभाविक था; और सोचा जाना चाहिये था।

मुझे वह दिन भली प्रकार याद है। रविवार था। पढ़ने जाना नहीं था। सबेरे का नाश्ता करके होस्टल के पांच-छह छात्र मेरे ही कमरे में आ जुटे थे। सब के सब मेडिकल कालेज में पढ़ते थे।

बात यद्यपि बहुत पुरानी हो चुकी है, पर जैसे अब भी वह चौकड़ी मेरी आँखों के सामने जमी हुई है। पतला-दुबला नरेन्द्र मेज के कोने पर बैठा था। उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। शरारत और शैतानी में वह एक ही था। कुर्सी पर रमाशंकर था, जिसे अपने व्यायाम-पुष्ट शरीर पर गर्व था। एफ० एस० सी० में उसने फर्स्ट डिवीजन लिया था। हरीश और विजय चारपाई पर बैठे थे। हरीश चुटकियां लेने और

ताने देने में सब से अधिक प्रवीण था। विजय अपेक्षाकृत सीधा-सादा था; और हर एक बात पर जी खोलकर हँसता था। एक मैं स्वयं था। पर रहने दो, अपने गुण-दोषों का विवेचन स्वयं नहीं करूंगा।

हरीश ने कहा : "इससे पहले मैं भूत-प्रेत पर विश्वास नहीं करता था। पर कल जब उस लड़की को देखा, तो बिना विश्वास किये न रह सका। किस तरह झूमती थी और नाचती थी।......"

मैंने बीच में टोककर कहा : "झूमती और नाचती हुई लड़कियों को देखकर तो भूत-प्रेत ही क्या, परमात्मा तक पर विश्वास किया जा सकता है।"

औरों को मुस्कराते देखकर हरीश हतप्रभ नहीं हुआ; बोला : "उसे सचमुच भूत चढ़ा हुआ था। यत्न करके कोई भी ऐसा उन्मत्त प्रदर्शन नहीं कर सकता।"

"ये भूत औरतों और लड़कियों को ही क्यों चढ़ते हैं ?" रमाशंकर ने तर्क करते हुए कहा। "मेरा तो विचार है कि मृगी और अपस्मार के दौरों को ही लोग भूत-प्रेत मान लेते हैं। बाकी किसी लड़की के अपस्मार को देखकर हरीश को भूत-प्रेत पर विश्वास हो गया है, यह प्रसन्नता की बात है।"

उसके बाद बातचीत में सजीवता, तेजी, और गरमी आती गयी। भूत होता है, इस पक्ष में हरीश और नरेन्द्र ने कई ऐसे रोंगटे खड़े कर देने वाले किस्से सुनाये, कि दिन के उजाले में भी शरीर में सनसनी मालूम देने लगी। पर विपक्ष में

मैंने और रमाशंकर ने ऐसे कई उदाहरण पेश किये, जिनमें कोई विशिष्ट उपद्रव, जो भूत-प्रेत के कारण होता समझा जाता था, अन्त में किसी दुष्ट व्यक्ति या किसी प्राकृतिक नियम के कारण होता पाया गया। आज मुझे दु:ख होता है कि मैंने उस विवाद में क्यों इतना बढ़-बढ़कर भाग लिया। मैं चुप रह सका होता, तो शायद अधिक भला होता।

नरेन्द्र ने बताया कि उसके गांव में एक गूंगा और बहरा आदमी है। बाइस साल की आयु तक वह सुनता भी था, और बोलता भी था। एक दिन खेत से लौटते हुए उसे बहुत रात हो गयी। गांव के बाहर एक पुराना बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था। जब वह आदमी पीपल के पेड़ के पास पहुँचा, तो देखता क्या है कि एक भूत पीपल की चोटी से सीधा उसकी ओर आ रहा है। सीधा से मतलब यह कि वह पेड़ से उतरकर नहीं, बल्कि चोटी से सीधा, सरल रेखा बनाता हुआ, आकाश में पैर रखता हुआ आ रहा था। भूत का शरीर राख की तरह मटमैला-सा था, पर फिर भी अंधेरे में साफ दिखायी पड़ता था। डर से घबराकर वह आदमी भागा; पर भाग कर दूर नहीं जा सका। एक गढ़े में पैर पड़ने से ठोकर खाकर गिर पड़ा। भूत ने आकर उसके मुँह और कानों को छुआ; और उसके बाद तेजी से दौड़ता हुआ एक ओर को अदृश्य हो गया। जैसे-तैसे उठकर लड़खड़ाता हुआ वह आदमी गांव में आया। वहां उसने यह घटना सुनायी। पर जब लोग सवाल-जवाब करने लगे, तो देखा गया कि उसके मुँह से बोल ही नहीं निकल रहा है। तब से अब

तक, दसियों बरस हो गये, वह गूंगा और बहरा है।

सब कुछ सुनकर रमाशंकर हँस पड़ा। बोला : "यह अच्छा है कि अब वह इस कहानी को बारबार नहीं सुना सकता। और पहली बार उसने जिन लोगों को सुनायी थी, वे शायद कहीं ढूंढे भी न मिलें। शायद ऐसी झूठी गप उड़ाने का ही भगवान् ने उसे यह दंड दिया है कि वाणी और कान दोनों से वंचित कर दिया।"

हरीश की जीभ ब्लेड की धार की तरह तेज हो उठी : "अपाहिजों के बारे में ऐसा नहीं कहना चाहिये। आज वह गूंगा-बहरा है, कल हममें से भी कोई हो सकता है।"

कितने भयंकर शब्द थे ये ! पर उस समय उतने भयंकर नहीं मालूम पड़े। आज अगर हरीश से कहा जाये, तो शायद वह इन्हें दुहराने का साहस न कर सके।

पर उस समय तो मैंने इन्हें हँसी में उड़ा दिया था। मैंने कहा : "प्रश्न गूंगे-बहरे होने का नहीं है; वह है भूत होने, न होने का। तुम लोग कानों से सुने भूत के बारे में विवाद करने लगे हो, पर मैंने तो अपनी आंखों से भूत को देखकर जान लिया है कि भूत नहीं होता।"

"हां !! आंखों से भूत को देखा भी, और फिर भी यही जाना कि भूत नहीं होता।" नरेन्द्र ने कहा।

"हां, यही बात है। जिसे सब लोग भूत कहते थे और जिसे दिखाने वाले ने भूत बताया था, उसी को देखकर मैं कह रहा हूं कि भूत नहीं होता।"

"तुमने कहां देखा ?" हरीश ने पूछा।

"अपने गांव में। एक तांत्रिक आया था। उसने और बहुत से चमत्कार दिखाये थे। सबसे अन्त में सबसे अधिक विस्मयजनक चीज उसने दिखायी थी और वह था भूत !

दिवाली की रात थी। अमावस का अंधेरा खूब काला हो उठा था। भूत देखने की उत्सुकता में कितने ही वृद्ध, युवक और बालक तांत्रिक के पास एकत्र हो गये थे। सामने दूर तक खेत ही खेत थे, जिनके ऊपर अंधेरे की स्याही बरस रही थी। उस ओर देखते ही भय मालूम होता था।

हम लोगों की उत्सुकता अधीरता में परिणत हो चली थी। पर तांत्रिक बारबार यही रहता था : 'अभी नहीं, ठीक आधी रात !'

सामने के अंधेरे में सियार रोने लगे। उनकी करुणा और भय उपजाने वाली ध्वनि शरीर में सिहरन पैदा करने लगी। तब तांत्रिक ने एक विचित्र उपक्रम किया। उसने कुछ लकड़ियां मंगवाई। उन पर घी में भिगोकर एक कपड़ा रखा। थोड़ा कपूर और हवन-सामग्री रखी। फिर उस सब में आग लगा दी। उन जलती हुई लकड़ियों को लेकर वह खेतों की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। तब उसने कुछ मंत्र पढ़ने शुरू किये। उन मंत्रों का उच्चारण ही ऐसा विकट था कि लोगों ने समझ लिया कि अब भूत बिना आये न रहेंगे। मन्त्र पढ़ने के साथ-साथ वह उन लकड़ियों को झूले की तरह झुलाता भी जाता था।

उसके झुलाने की गति क्रमशः बढ़ती गयी। मंत्रों का उच्चारण तीव्रतर और कटुतर होता गया। अन्त में उसने

एकाएक जोर की चीख मारकर वे जलती हुई लकड़ियां भूमि पर पटक दीं। और उसके पटकने के साथ ही दूर खेतों के अंधेरे में खूब लपटें फेंकती हुई आग जल उठी।

तांत्रिक ने कहा : 'देखो, वे भूत आग के चारों ओर चक्कर बना कर नाच रहे हैं, और लोगों ने देखा कि काली काली छायाएं लपटों के चारों ओर घूम रही हैं। बड़े-बड़े अविश्वासियों को भी उस दिन विश्वास हो गया। केवल पांच-सात नयी उम्र के छोकरे अपना कुतूहल नहीं दबा सके। जब भूत आँखों के सामने हैं, तो पास जाकर देखना अधिक अच्छा रहेगा, ऐसा सोचकर वे तीर की तेजी से अंधेरे में जलती आग की ओर दौड़ पड़े।

तांत्रिक चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहने लगा : 'खबरदार! उनके पास जाकर उनके नृत्य में विघ्न डालोगे, तो वे तुम्हारी गर्दन मरोड़कर गरमागरम खून पी जायेंगे।'

चेतावनी डरावनी थी। पर जो एक बार दौड़ पड़े थे, वे रुके नहीं। बढ़े ही चले गये। पर उनके पास पहुँचने से पहले ही आग बुझ गयी और भूत फिर अंधेरे में छिप गये।

अब सचमुच डरने का अवसर उपस्थित हुआ। सब ओर घुप्प अंधेरा। नाचते हुए भूत एकाएक आग बुझाकर लुप्त हो गये। और तांत्रिक ने जो गर्दन मरोड़ने और गरम खून पीने की चेतावनी दी थी! अब इस प्रकार के उद्दंड साहस का फल हम सबको हाथों-हाथ मिल जायेगा, इसमें किसी को संदेह न रहा।

पर तभी अंधेरे में आशा की किरण के समान दिखायी पड़ा कि आग पूरी तरह बुझी नहीं। एक छोटी सी चिनगारी शेष है; और वह चिनगारी धीरे-धीरे एक ओर को जा रही है। मरता हुआ उत्साह फिर जी उठा। उसी चिनगारी को लक्ष्य करके हम फिर लपके। लगा कि कोई सदेह प्राणी उस चिनगारी को लिये जा रहा है। कई आवाजों ने कड़क कर एक साथ जो पूछा कि 'कौन है ?' तो गांव का चौकीदार बहुत विनम्र होकर सामने आ गया। जो मशाल उसने जलायी थी, उसे बुझाते हुए पूरी तरह से नहीं बुझा सका; और एक चिनगारी चमकती रह गयी। इससे तांत्रिक की सारी पोल खुल गयी। चौकीदार ने खुद कहा कि तांत्रिक ने बताये हुए समय पर मिट्टी के तेल की मशाल जलाने के लिए मुझे तीन रुपये दिये थे।"

सुनकर आधा मिनट तो सब चुप रहे। फिर कहानी के जादू को तोड़ते हुए हँसकर नरेन्द्र ने कहा: "ऐसी कहानियां तो मैं भी बनाकर कई सुना सकता हूँ।"

"कहानी नहीं, सच है।" मैंने गम्भीर बनते हुए कहा। पर आज सोचता हूँ कि काश, मैंने उस समय यह घटना न सुनायी होती!

"तो तुम्हारा मतलब है कि भूत नहीं होता" नरेन्द्र ने जोर देकर पूछा। पर मुझसे पहले जवाब दिया रमाशंकर ने: "नहीं होता, नहीं होता! एक बार नहीं, हजार बार नहीं होता।"

"तो हमारे मुर्दाघर के पास रात-रात भर जो खेल-तमाशे

और नाच-गाने की आवाजें आतीं हैं, वे क्या हैं ?"

"केवल मन का वहम। और कुछ भी नहीं।"

"सारी दुनिया वहमी है। एक तुम ही बिना वहम के हो। पर बच्चू, कभी वास्ता पड़ गया, तो नानी याद आ जायेगी।" हरीश ने कहा।

रमाशंकर को जरा गरमी आ गयी। तभी नरेन्द्र बोला: "अगर और सब वहमी हैं और तुम्हें ही वहम नहीं होता, तो मुर्दाघर में मेज पर जो मुर्दा पड़ा है, उसके मुँह में आज रात को एक बताशा रख आओ। परीक्षा हो जायेगी कि हमें वहम है, या तुम्हीं अविश्वासी हो।"

"अच्छा, यही सही। मैं एक नहीं, दस बताशे रख आऊंगा। उन मुर्दों को तो रोज चीरते हैं; यदि उन्हीं से डरने लगें, तो फिर हमारी पढ़ाई हो चुकी!"

"पर जाना ही हो, तो संभल कर जाना। उनके सामने तुम्हारी ये बलिष्ठ पेशियां काम नहीं आयेंगी। उनकी एक फूंक से ही आदमी का सारा खून पानी हो जाता है।" हरीश ने कहा।

मैंने जवाब में कहा: "यह तो आदमी आदमी पर है। जिनके खून में पहले ही पानी अधिक होता है, उनका खून जल्दी पानी बनता है।"

तय हो गया कि आज रात को रमाशंकर मुर्दाघर में जाकर मुर्दे के मुँह में बताशा रखेगा। अब सोचता हूं कि यदि मैंने बढ़ावा न दिया होता, तो शायद यह निश्चय न हुआ होता और वह अच्छा रहता।

रात कृष्ण पक्ष की थी। अंधेरा खूब था। मुर्दाघर उस जगह से बहुत दूर नहीं था। पर फिर भी जब रमाशंकर अपनी साहस यात्रा पर चलने को तैयार हुआ, तो अपने आप ही कुछ भय सा मालूम होने लगा, जैसा कि शुरू-शुरू में कोई सार्वजनिक प्रदर्शन करते समय होता है।

मैंने कहा : "रमाशंकर, मुर्दाघर में बिजली है। जरूरत हो, तो बत्ती जला लेना।"

"फिर जाने की जरूरत नहीं।" हरीश बोला : "इसी तरह बहादुरी दिखानी है, तो वह देख ली। जिनका साहस बिजली की रोशनी में ही स्थिर रहता है, उन्हें अंधेरे में जाना उचित नहीं।"

"अच्छा, अच्छा; नहीं जलाऊंगा बिजली भी। सब कुछ तो देखा-भाला है। एक बताशा मुँह में रखूंगा, एक छाती पर और तीन सिर के तीनों ओर। कल सवेरे जाकर देख लेना।" कहकर रमाशंकर चल पड़ा।

आकाश स्वच्छ और निस्तब्ध था। वायु शान्त थी। किसी पत्ते की खड़खड़ तक सुनायी नहीं पड़ती थी। यह सन्नाटा रमाशंकर के लिए प्रिय न हो कर उद्वेगजनक था। वस्तुतः वह उतना साहसी न था, जितना वह अपने आपको दिखा रहा था। उससे अधिक साहस जिसमें था, वह भी बाद में छिपा न रहा।

बड़े साहस के साथ रमाशंकर ने मुर्दाघर का दरवाजा खोला। मुर्दाघर में एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध भरी हुई थी, जिसने उसके चित्त में कुछ अस्थिरता उत्पन्न कर दी। अंधेरे में

टटोलता हुआ, वह उस मेज के पास पहुंचा, जिस पर आधा चीरा हुआ मुर्दा रखा हुआ था। सहसा उसे लगा कि जैसे उसने किसी के सांस लेने का शब्द सुना है। उसके रोंगटे खड़े हो गये। यत्न करके उसने अपने आपको समझाया कि यह मन के बहम के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। खूब दिल कड़ा करके उसने मुर्दे को टटोला। मुर्दा मेज पर ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था। हिम्मत करके उसने एक बताशा उसके होठों पर रख दिया। पर आश्चर्य! वे होठ उसे मुर्दे के अकड़े हुए होठों जैसे नहीं जान पड़े।

बताशा रखकर वह एकदम लौटने वाला ही था कि 'चप चप' की बहुत धीमी आवाज सुनायी पड़ी, जैसे मुर्दे ने होठ चलाये हों। रमाशंकर के शरीर में सनसनी दौड़ गयी। बताशा होठों पर ज्यों का त्यों रखा हुआ है या नहीं, यह देखने के लिए उसने मुर्दे के होठों को छुआ। बताशा वहां नहीं था। स्पष्ट था कि मुर्दे ने उसे निगल लिया है। रमाशंकर को पसीना आ गया। पर यह सोचकर कि शायद किसी तरह बताशा नीचे गिर गया होगा और यदि कल सबेरे बताशा मुर्दे के मुँह में न पाया गया, तो उसका यहां आना ही निरर्थक हो जायेगा, उसने एक और बताशा मुर्दे के होठों पर रखा। और उसके आश्चर्य तथा भय की सीमा न रही, जब कि वह बताशा भी पहले की ही भांति विलीन हो गया। उसके बाद उसने रुकना उचित न समझा और सीधा दरवाजे की ओर बढ़ा।

तभी मुर्दा एकाएक थोड़ा सा हिला और बहुत ही दुर्बल

आवाज में बोला : "एक और !" रमाशंकर का धैर्य छूट गया। उसने लपक कर बिजली का बटन दबा दिया। पर स्विच दबाने का कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। बत्ती जली ही नहीं। और रमाशंकर वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद नरेन्द्र दौड़ता हुआ मेरे कमरे में आया। बोला : "रमाशंकर बेहोश हो गया है। जल्दी चलो।" हम सभी घबड़ा गये और लपक कर नरेन्द्र के साथ मुर्दाघर पहुँचे।

रमाशंकर को उठाकर हम होस्टल में ले आये। पर उसको बेहोशी से जगाया नहीं जा सका।

अगले दिन एकान्त में हरीश ने मुझे बताया कि मुर्दाघर में मेज पर से मुर्दे को हटाकर उसकी जगह नरेन्द्र लेट गया था। सावधानी के तौर पर बिजली का बल्ब उसने पहले ही उतार दिया था।

सुनकर मैं अवाक् हो रहा।

५.

पैसा और इलाज

डाक्टर रामनाथ ने बरसों तक डाक्टरी की दूकान की थी। उनके हाथ में यश था। उनका काम खूब चला। उन्होंने धन भी काफी कमाया। किसी प्रकार का व्यसन उन्होंने पाला नहीं था; इसलिए चंचल लक्ष्मी भी उनके पास आकर कुछ स्थिर हो गई। उन्होंने शहर के सम्पन्न लोगों की आबादी में बड़े चाव के साथ अपना मकान बनवाया था। आज इस मकान का उद्घाटन समारोह था; इसी को उन्होंने 'गृह प्रवेश संस्कार' का नाम दिया था। इस अवसर पर अनेक इष्टमित्र निमंत्रित हो कर उपस्थित हुए थे।

डाक्टर रामनाथ का मकान अच्छा और सुरुचिपूर्ण ढंग से बना हुआ था। यद्यपि यह मकान व्यापारियों और सटोरियों के मकानों के समान बड़ा और शानदार न था, फिर भी इस दृष्टि से काफी अच्छा और बड़ा था कि डा० रामनाथ ने अपने वर्षों की परिश्रम की कमाई से उसे बनवाया था। डाक्टर साहब बेचारे बहुत सहृदय और भद्र व्यक्ति थे। यह

ठीक है कि उन्होंने चिकित्सा के लिए अपने रोगियों से फीस ली थी, फिर भी अपनी फीस के लिए रोगी को फंसाये और उलझाये रखने का यत्न उन्होंने कभी नहीं किया था। साथ ही समझदार व्यक्ति की भाँति उन्होंने मुर्गियों से सोने के अंडे लेने की ही कोशिश की थी; उनका पेट चीरकर एक ही दिन में सारा सोना ले लेने का यत्न नहीं किया था।

समारोह बहुत अच्छा रहा। डाक्टर साहब ने समाज में अच्छा स्थान बना लिया था, इसलिए अनेक प्रतिष्ठित सज्जन इस अवसर पर उपस्थित हुए थे। कई सरकारी पदाधिकारी तथा कालेजों के प्रोफेसर भी डाक्टर साहब के रोगियों में थे और बहुत दिन तक रोगी रहने के कारण मित्र बन गये थे। वे भी इस आयोजन में शोभा बढ़ाने के लिए आये थे।

मांगलिक कृत्यों के बाद सब लोगों को एक-एक कागज का थैला दिया गया, जिसमें आठ-आठ लड्डू थे। यह अभ्यागतों के लिए विदा होने का संकेत था। लोग कागज के थैले ले कर उनमें से लड्डू खाते हुए मधुर वाणी से डाक्टर साहब को बधाई देते हुए चलने प्रारम्भ हो गये। अन्त में बहुत थोड़े से लोग बच गये, जो डाक्टर साहब के अन्तरंग मित्रों में से थे। इन लोगों का दोपहर का भोजन भी डाक्टर साहब के घर पर ही था।

भोजन तैयार होने में अभी काफी देर थी। इसलिए इन सभी लोगों ने एक बड़े कमरे में डेरा लगा लिया। थोड़ा-सा जलपान कर लेने के बाद गपशप होने लगी। डाक्टर साहब भी घर में दो-एक आवश्यक कार्यों को निबटा चुकने के बाद

इसी कमरे में आ गये ।

प्रोफेसर वनमाली को छेड़छाड़ की आदत थी । डाक्टर साहब के आते ही बोले : "आइये, डाक्टर साहब ! यहाँ आ कर बैठिये, मेरे पास ।"

जब डाक्टर साहब आ कर बैठ गये, तो प्रोफेसर बोले : "कहिये, आज कल मौसम कैसा चल रहा है ?" और कह कर शरारत के साथ मुस्कराने लगे ।

सुधीर बाबू वकील थे । वकालत पास की थी, किन्तु कचहरी में उनको विशेष सफलता न मिली थी । हँसते हुए कहने लगे : "यह बात हमें भी बड़े मजे की लगती है कि डाक्टरों के लिए मौसम तभी अच्छा होता है, जब कि चारों ओर जोर से बीमारी फैल रही हो । अगर ऋतु ऐसी हो कि सभी लोग खूब स्वस्थ हों, तो डाक्टरों की अपनी सूरत बीमारों की-सी हो जाती है; और वे बड़े ही उदास स्वर में कहते हैं कि आजकल तो बहुत ही खराब मौसम चल रहा है ।"

डाक्टर रामनाथ हँसते हुए बोले : "यह तो पेशे-पेशे की बात है, वकील साहब ! माली को वर्षा अच्छी लगती है, और कुम्हार को बुरी । अगर झगड़े-दंगे न हों, और लोग मुकदमे-बाजी न करें, तो वकीलों को ही कैसा लगे ?"

डाक्टर साहब के जवाब पर कहकहा लग गया । वकील साहब एकाएक कुछ उत्तर न दे पाये । तभी एक और कोई सज्जन बोले : "एक बार की बात है कि एक वकील साहब किसी नये शहर में रोजी की तलाश में पहुँचे । अभी शहर के बाहर ही थे । एक कुएं पर पानी पीने के लिए रुके थे । एक

आदमी ने उन्हें पानी पिलाया। जब वे पानी पी चुके, तो पानी पिलाने वाले पूछने लगे : 'क्यों जी, यह शहर कैसा है ?' उसने जवाब दिया कि बहुत अच्छा। तो आप पूछते हैं : 'यहां के आदमी कैसे हैं ?' वह बोला : 'बहुत ही भले। न झगड़ा-फसाद करते हैं और न चोरी-चकारी। मजे से रहिये।' वकील साहब का चेहरा उतर गया और वे यह कहकर कि 'यहां के आदमी भी कोई आदमी हैं; और यह शहर भी कोई शहरों में शहर है', वहीं से उलटे पांव लौट लिये।"

वकील साहब को काफी झेंपना पड़ा। मित्रों ने खूब आनन्द लिया। थोड़ी देर बाद प्रोफेसर वनमाली फिर बोले : "असल में दूसरों की मुसीबत से लाभ उठाने का पेशा ही बुरा है।"

यह वकील साहब और डाक्टर साहब दोनों पर इकट्ठा वार था। इसलिए दोनों मिल गये। वकील साहब बोले : "दूसरों की मुसीबत से लाभ उठाना कहते हैं आप ? दूसरों की मुसीबत में मदद करना कहिये। अगर डाक्टर मदद न करे, तो बीमार सीधा मसान में ही दिखाई दे।"

"और अगर वकील मदद न करे, तो जेल में जाकर चक्की पीसे !" डाक्टर साहब ने सहारा दिया।

पर प्रोफेसर कच्चे आदमी न थे। बोले : "क्षमा कीजियेगा, डाक्टर साहब ! क्या रोगी की सहायता यही है कि उससे रोटी छीनकर उसे दवा की गोली दे दी जाये ? उसके कपड़े उतार कर उसे पानी की शीशी थमा दी जाये ?"

"तो फिर लोग रोटी गंवाने और कपड़े उतरवाने डाक्टरों

के पास आते ही क्यों हैं?" डाक्टर साहब कुछ गम्भीर होकर बोले। बात उन्हें कुछ चुभी सी थी।

इस मंगल और प्रसन्नता के अवसर पर डाक्टर खिन्न हों, यह कोई न चाहता था। पर पता नहीं, प्रोफेसर के मन में क्या था। बोले : "देखिये, डाक्टर साहब, आप बुरा न मानियेगा। आपके लिए नहीं कह रहा......"

"अजी छोड़िये भी इस किस्से को। आप ऐसी बात कहें ही क्यों, कि किसी को बुरा मानने की जरूरत पड़े?" एक और मित्र ने बात को टालने की गर्ज़ से कहा।

"नहीं नहीं, बुरा मानने की क्या बात है! आप कहिये।" डाक्टर रामनाथ ने उदारता प्रकट करते हुए कहा।

"मैं यह समझता हूं कि चिकित्सा मानव जाति की सेवा के लिए की जानी चाहिये, धनोपार्जन के लिए नहीं।" प्रोफेसर वनमाली ने डाक्टर की उदारता से लाभ उठाते हुए कहा : "धन कमाने के लिए और बहुत से व्यवसाय हैं। आदमी ईंटों का भट्ठा लगा ले, रुई या खली का व्यापार शुरू कर दे; या होटल चला ले। परन्तु धनोपार्जन के लिए चिकित्सा को व्यवसाय न बनाये। आजकल बहुत से डाक्टर—मैं नहीं कहता कि हमारे मित्र रामनाथ जी भी उनमें से एक हैं—धन के लिए चिकित्सा करते हैं। परिणाम यह होता है कि धन प्रमुख बन जाता है और चिकित्सा गौण रह जाती है।"

डाक्टर साहब ने कुछ उत्तर देना आवश्यक समझा, बोले : "तो क्या आप समझते हैं कि डाक्टर को और उसके बीवी-बच्चों को भूख नहीं लगती? क्या उन्हें रहने को मकान

और पहनने को कपड़े नहीं चाहियें ? क्या डाक्टर को ये चीजें बिना पैसे के मिल जाती हैं ?"

"मेरे कहने का मतलब यह नहीं है।" वनमाली बोले : "मैं यह कहना चाहता हूं कि डाक्टरों को, या सभी चिकित्सकों को सन्तों, त्यागियों और तपस्वियों का-सा जीवन बिताना चाहिये। क्या सब सन्त और तपस्वी भूखे मर गये ? क्या लक्ष्मी उनके चरणों में स्वयं नहीं आ गई ? पर लक्ष्मी को सन्तुष्ट करने के लिए आजकल जो व्याधि देवी की उपासना की जाती है, वह मुझे अच्छी नहीं लगती।"

इस मंडली में एक बड़ी आयु के सज्जन भी थे, जो अब तक चुप बैठे केवल मुस्करा रहे थे। ये किसी समय अदालत में जज रहे थे, पर अब इन्हें रिटायर हुए भी कई वर्ष हो चुके थे। इनके बाल सफेद थे; और अनुभव के लेख की भांति चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं। इस समय क्षण भर के लिए लोगों को चुप देखकर यह सज्जन अपनी धीमी, किन्तु प्रभावपूर्ण आवाज में बोले : "प्रोफेसर की बात सुनकर मुझे एक पुरानी घटना याद आ गई।"

जज साहब की आवाज कुछ ऐसी थी, जैसे सुदूर अतीत में से सुनाई पड़ रही हो। ऐसी आवाज को ध्यान दे कर सुनना ही पड़ता है। वे कहने लगे : "तब की बात है, जब मैं जवान था। उन दिनों मेरी नौकरी लगी ही लगी थी। आगरा में एक डाक्टर होते थे, जिनका नाम अमृतचरण घोष था। वे ए० सी० घोष नाम से प्रसिद्ध थे। उनका नाम बहुत चलता था। यह तो ठीक मालूम नहीं कि लोग उनकी दवाई

से अच्छे हो जाते थे, या नहीं; परन्तु उनके यहां भीड़ इतनी अधिक होती थी कि लोग सुबह से दोपहर तक बैठे रहते थे, फिर भी उनकी डाक्टर साहब के सामने जाने की बारी आ पाती थी। काम ज्यादा देखकर डाक्टर घोष ने अपनी फीस बढ़ानी शुरू कर दी। पहले वह कुछ फीस न लेते थे; केवल दवा का दाम लेते थे। पर जब काम बढ़ गया, तो वे पहले पांच रुपये, फिर दस रुपये, फिर सोलह रुपये फीस लेने लगे। दवाई का दाम इसके अतिरिक्त लेते थे। मैं उन्हीं के यहां से दवा लिया करता था। मुझ से वह न फीस लेते थे और न दवाई का दाम।

एक दिन जब मैं डाक्टर घोष के यहां दवा लेने के लिए गया हुआ था, तो वहां एक विचित्र घटना घटी। एक देहाती आदमी अपने बालक को लेकर डाक्टर घोष के पास इलाज कराने के लिए आया। वह डाक्टर के पास पहुंचा और एक दस रुपये का नोट उनकी ओर बढ़ाकर बोला : 'डागदर साहब, मेरे पास ये दस रुपये हैं। ये ले लो और मेरे बेटे का इलाज कर दो।'

डाक्टर घोष ने उसकी ओर इस प्रकार घूरकर देखा, जैसे वह कोई अद्भुत जानवर हो। उसी तरह कुछ देर देखते रहने के बाद वह बोले : 'छह रुपये और लाओ।'

आदमी बहुत ही विनीत बन गया। कहने लगा : "मेरे पास और रुपये हैं ही नहीं डागदर साहब। ये रुपये भी मैं बर्तन गिरवी रख कर लाया हूं। आप मेरे रमुआ की जान बचा लो; मैं आपके बाकी पैसे बाद में चुका दूंगा।'

डाक्टर घोष का, लगता है, ऐसे आदमियों से बहुत वास्ता पड़ता रहा था। वह शायद जानते थे कि मरीज की जान जब तक संकट में है, तभी तक इन लोगों से पैसा वसूल किया जा सकता है। उसके बाद फिर खाल चाहे उतरवा ली जाये, पर एक कौड़ी वसूल नहीं की जा सकती। बहुत ही रुखाई के साथ उन्होंने कहा : 'छह रुपये और लाओ। अगर अभी न हों, तो जब हो जायें. तब लेकर आना। इस समय जाओ और मुझे काम करने दो।'

उस आदमी की आँखों में आँसू भर आये। उसने डाक्टर घोष के पैर पकड़ लिये। पर पैर पकड़ने के बदले छह रुपये थोड़े ही छोड़े जा सकते थे! डाक्टर घोष ने सख्ती के साथ उसे परे करते हुए कहा : 'मैं यहां खैरात बांटने नहीं बैठा हूं। पैसे के बिना दवा मेरे यहां नहीं मिलती।'

बहुत ही उदास होकर वह देहाती बाहर निकल गया। डाक्टर घोष ने उसकी ओर तीखेपन से देखते हुए धीमे से कहा : 'और पैसे नहीं हैं! पैसे तो अभी निकल आयेंगे। ये लोग भी एक ही काइयां होते हैं।'

थोड़ी-सी देर के बाद वह आदमी फिर आवेग के साथ कमरे में आ घुसा। मैंने समझा कि डाक्टर घोष की बात सच निकली। शायद सचमुच ही इसकी जेब में छह रुपये और निकल आये हैं। पर उसने रुपये की कुछ बात नहीं की। बहुत ही करुण और विनीत स्वर में बोला : 'डागदर साहब, वह मर रहा है। उसकी जान बचा लीजिये। वह मर जायेगा, उसकी जान बचा लीजिये।'

उसकी आवाज में एक अजीब कम्पन था, जिससे खिड़कियों के शीशे तक झनझना उठे थे। डाक्टर साहब को उत्तर देने का अवसर न मिला। बाहर से किसी स्त्री के चीख-चीखकर रोने की आवाज आई। आवाज से स्पष्ट था कि स्त्री मृत्यु के लिए विलाप कर रही थी। वह आदमी एकदम चौंक उठा। उसका चेहरा फक्क पड़ गया : 'मर गया !' उसके मुँह से निकला। उसका चेहरा वेदना से ऐसा विवर्ण हो उठा कि मैं कई दिनों तक उसे भूल न सका। एकाएक उन्मत्त की तरह वह कमरे से बाहर निकल गया।"

जज साहब की आकृति, उनकी आवाज और प्रभाव ऐसा था कि सब लोग उत्सुकता से सुन रहे थे। जब क्षण भर को जज साहब चुप भी हुए, तब भी किसी ने कुछ कहकर शान्ति भंग करने की चेष्टा नहीं की। दो एक क्षण जज साहब चुप रहे और फिर दो क्षण की चुप्पी में जैसे कई वर्ष बिता दिये हों, इस प्रकार बोले :

"डाक्टर घोष ने बहुत पैसा कमाया। बढ़िया मोटर कार और शानदार कोठी के अलावा उनका लाखों रुपया बैंक में जमा था। उनके इलाज की ऐसी धूम थी कि उनसे बिना इलाज कराये कोई मरना ही न चाहता था। स्वयं मैं बरसों तक उनसे इलाज करवाता रहा। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके इलाज से बिलकुल ही लाभ न होता था। पर अब मुझे ऐसा अनुभव होता है कि डाक्टर घोष की सफलता का रहस्य यह था कि रोगी एक बार उनके पास आ कर सदा के लिए

रोगी बन जाता था; और मरते दम तक उनके पास आने का मूल्य चुकाता रहता था।

पर एक बार डाक्टर घोष स्वयं बीमार पड़ गये। बीमारी क्या थी, यह वह स्वयं अच्छे डाक्टर होते हुए भी भली भांति नहीं जान पाये थे। उनके दायें हाथ में बड़े जोर का दर्द उठा करता था। इस तरह की बीमारी उस इलाके के गांवों में कभी-कभी किसी व्यक्ति को हो जाती थी। बड़ी भयंकर बीमारी थी यह। कुछ दिन तक तीव्र यंत्रणा रहने के बाद हाथ सुन्न होने लगता था और अन्त में सड़ना प्रारम्भ हो जाता था। एक हाथ के बाद दूसरे हाथ की बारी आती थी और अन्त में रोगी की बहुत कष्टपूर्ण मृत्यु होती थी। डाक्टर घोष इस बात को जानते थे और यह भी जानते थे, कि इस रोग का कोई इलाज डाक्टरों के पास नहीं है। शारीरिक कष्ट के साथ-साथ उनके मानसिक कष्ट की भी कोई सीमा न थी।

भारतवर्ष में किसी व्यक्ति के बीमार हो जाने पर उससे मिलने वाला प्रत्येक व्यक्ति इलाज के लिए कोई न कोई नुस्खा बताकर ही लौटता है। रोग जितना ही असाध्य होता है, इन बिना मूल्य बताये गये नुस्खों की संख्या उतनी ही अधिक होती है। रोग असाध्य होने पर इन ऊटपटांग सभी नुस्खों का प्रयोग करके भी देखा जाता है। डाक्टर घोष के कोई मित्र बता गये कि दस-बारह मील दूर कोई मन्दिर है। वहां एक बाबा रहता है, जो इसी बीमारी का इलाज करता है। पैसा-धेला कुछ नहीं लेता। डाक्टर घोष के पास पैसे की कमी नहीं थी; पर यह जानकर उन्हें भी बहुत सन्तोष हुआ कि

इलाज के लिए वह बाबा पैसा-धेला कुछ नहीं लेगा।

जब वह मुझे मिले, उस समय वह उस बाबा के पास हो कर लौट आये थे। बहुत उदास थे। वह मेरी सहायता चाहते थे। बाबा कुछ सनकी मालूम होता था। जब किसी का इलाज नहीं करना होता था, तो वह उसे योंही दूर से ही 'भाग जा' 'चला जा' 'मुझे आराम करने दे' इत्यादि कहकर वापस कर देता था। उस पर किसी का कोई जोर नहीं था, इसलिए वह जो कुछ कहे, सब मानना ही पड़ता था। डाक्टर घोष चाहते थे कि मैं उनके साथ चलूं और किसी तरह बाबा को इस बात के लिए राजी करूं कि वह उनका इलाज कर दे।

मैंने कहा कि चलने में मुझे कोई ऐतराज नहीं है; पर मुझे बहुत सन्देह है कि उसके इलाज से आपको वस्तुतः कुछ लाभ हो सकेगा।

डाक्टर घोष ने निश्चय के साथ कहा कि लाभ तो अवश्य होगा। वह ऐसे कई व्यक्तियों से अब तक मिल चुके थे, जिन्हें बाबा के इलाज से फायदा हुआ था। बाबा के पास कोई दवाई थी, जिसे वह अपने सामने ही रोगी को पिला देता था और किसी भी शर्त पर दवा को घर नहीं ले जाने देता था। इसलिए उसकी दवाई का रहस्य रहस्य ही बना हुआ था।

जिस समय हम लोग डाक्टर घोष को लेकर उस बाबा के पास पहुँचे, उस समय दोपहर होने में कुछ देर थी। शायद ग्यारह बजे का समय रहा हो। मन्दिर के सामने एक पीपल का घना वृक्ष था; उसकी छाया में बाबा जी महाराज एक चारपाई पर लोट लगा रहे थे। दो-चार भक्तगण विनीत

भाव से पास बैठकर चिलम पी रहे थे। उबलती हुई दाल की सुगन्ध भी आस-पास फैल रही थी।

डाक्टर घोष को देखते ही बाबा का पारा चढ़ गया। चिल्ला कर बोला: 'तू फिर यहाँ आया। जा; भाग जा यहां से।'

मैं हैरान हो कर देखता रह गया। इस व्यक्ति की शक्ल को मैं कभी नहीं भूल सकता। यह वही व्यक्ति था, जिसे मैंने कोई दस-बारह वर्ष पूर्व एक दिन डाक्टर घोष की दूकान पर देखा था; जिसका पुत्र इसलिए मर गया था कि वह फीस के लिए १६ के बजाय केवल १० रुपये ही जुटा सका था। इस व्यक्ति के चेहरे की छाप मेरे मन पर बहुत गहरी पड़ी हुई थी। मैंने स्वप्न में भी आशा न की थी कि वह यहां इस तरह बाबा के रूप में दिखाई पड़ेगा। पर इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि यह वही था। विस्मय के मारे मेरे मुँह से एकाएक बोल तक न निकला।

पर शीघ्र ही मैंने अपने पर काबू किया और पास जाकर विनीत भाव से बाबा को प्रणाम किया। बाबा ने अचरज से मेरी ओर देखते हुए कहा: 'सुखी रहो। तुम कौन हो?'

'मैं आगरा में जज हूँ। आपकी ख्याति सुन कर यहां आया हूं।'

मेरे इस वक्तव्य का बाबा पर प्रभाव अवश्य पड़ा। बोले: 'बैठो, कैसे आये?'

'ये डाक्टर घोष मेरे मित्र हैं। इन्हें कुछ बीमारी हो गई है। उसका इलाज आपके सिवाय और कोई कर नहीं सकता।

आप इन्हें ठीक कर दें, तो बड़ी दया होगी।'

'इसका इलाज मैं नहीं करूंगा।' बाबा की आवाज बहुत दृढ़ थी और मैं उस दृढ़ता के औचित्य को अनुभव कर रहा था। बाबा ने डाक्टर घोष को तो पहचान लिया था, पर मुझे वह न पहचान पाया था।

अवसर पा कर डाक्टर घोष बोले: 'महाराज, आप मुझसे चाहे जितने रुपये लें; मैं देने को तैयार हूँ। पर इस समय कृपा कर दीजिये।'

'मैंने औरों से ही बड़ी माया ले ली है न, जो तुझ से रुपये लूंगा।' फिर जैसे विनोद सा करते हुए बोला: 'कितना रुपया दे देगा तू?'

डाक्टर घोष आतुर थे, इसीलिए आशान्वित हो उठे। बोले: 'आप जितना माँगें महाराज, उतना दूँगा। हजार, पांच हजार, दस हजार, जितना भी माँगें।'

'और जो मैं लाख माँगूं तो?'

'तो मैं लाख रुपये भी दूँगा। पर आप मुझे एक बार ठीक कर दीजिये।' डाक्टर घोष अधीर हो उठे।

'और जो मैं लाख रुपये ले लूँ; और फिर भी तुझे ठीक दवाई न दूँ; सिर्फ पानी में नमक घोलकर दे दूँ तो?'

डाक्टर घोष का मुँह उतर गया। उन्हें एकाएक ध्यान आया कि स्वयं उन्होंने अनेक बार ऐसे रोगियों को पैसे लेकर दवा दी थी, जिनके रोग वह पहचान न पाये थे; और जिनके विषय में उन्हें ठीक मालूम न था कि वे किस दवा से ठीक होंगे। अगर इस समय यह बाबा भी ठीक वैसा ही करे

तो...?' एकाएक वह कुछ उत्तर न दे सके।

'अपना भला चाहता है, तो यहाँ से चला जा। तेरा इलाज मेरे पास नहीं है।'

डाक्टर घोष फिर भी न हिले, तो बाबा नाराज हो उठा: 'मेरा मुँह क्या देख रहा है? कह तो दिया कि मैं गरीबों का इलाज करता हूँ, अमीरों का नहीं। आया है मुझ पर रुपये की धौंस जमाने! रुपया उन्हें जाकर दे, जो रुपये से इलाज करते हैं।'

मैंने बीच में कुछ बोलने की कोशिश की, तो बाबा ने रोकते हुए कहा: 'तुम्हें कुछ मालूम तो है नहीं, फिर तुम बीच में क्यों बोलते हो?'

और बाबा ने डाक्टर घोष को दवा नहीं दी; नहीं ही दी।

लौटते समय मौका पाकर मैंने बाबा के एक भक्त से उसका हाल मालूम किया, तो उसने बताया कि पहले यह बाबा पास ही के गाँव का एक किसान था। बीमारी में इसका बेटा जाता रहा। लड़के के दुःख में इसकी पत्नी भी मर गई। उन्हीं दिनों यहाँ एक साधु महात्मा आये थे; यह उनका चेला बन गया। उसी महात्मा ने इसे यह दवा बताई थी। यह बस एक ही बीमारी का इलाज जानता है और उसके इलाज के लिए किसी से पैसे नहीं लेता।

मैंने डाक्टर घोष को अन्त तक यह नहीं बताया कि वह बाबा कौन था, और यह कि मैं उसे पहचानता था, और यह कि उसने डाक्टर घोष का इलाज क्यों नहीं किया था।

मेरा खयाल था यह सब बताने से डाक्टर घोष का

मानसिक कष्ट अधिक ही होता और उस दशा में उनकी मृत्यु उससे भी अधिक कष्टपूर्ण होती, जितनी कि वस्तुतः दो एक महीने बाद हुई।"

जज साहब चुप हो गये। डाक्टर घोष की कष्टपूर्ण मृत्यु की कल्पना से हम लोग सिहर से उठे। जरा देर सब शान्त रहे। उसके बाद डाक्टर रामनाथ बोले: "जज साहब, इस घटना ने मुझे नई राह दिखा दी है। मैं समझता हूँ कि अब मेरे पास खाने पहनने को काफी पैसा है। इसलिए पैसे के वास्ते दवा देने की मुझे जरूरत नहीं है। आज से मैं इलाज तो सबका करूँगा, परन्तु पैसे उसी से लूँगा, जो अपने आप प्रसन्नतापूर्वक देना चाहेगा।"

और प्रोफेसर वनमाली डाक्टर के मुँह की ओर देखते रह गये।

श्री विराज की अन्य रचनाएं

किशोर-साहित्य

१. **वनराज के राज में (सचित्र)**—वन में भ्रमण, शिकार तथा साहसिक कार्यों का सच्चा और रोचक वर्णन। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत। कीमत चार रुपये।

२. **साहसी जीवन (सचित्र)**—इतिहास की कुछ चुनी हुई साहसपूर्ण कथाएं। बालकों के चरित्र निर्माण के लिए उपयोगी। कीमत सवा रुपया।

३. **तिरंगा झण्डा**—बालकों में बलिदान की भावना जगाने वाले एकांकी नाटकों का संग्रह। कीमत सवा रुपया।

४. **जंगल की बातें (सचित्र)**—कीमत सवा रुपया।

५. **जंगल के रहस्य (सचित्र)**—ये दोनों पुस्तकें जंगल के पशुओं के बारे में रोचक और उपयोगी जानकारी देने वाली हैं। कीमत सवा रुपया।

६. **हाथियों की खोज में (सचित्र)**—कुछ साहसी युवकों द्वारा हाथियों के झुण्ड से एक हाथी के बच्चे को छीन लाने की सच्ची घटना का सजीव वर्णन। कीमत डेढ़ रुपया।

७. **प्राणों की बाजी (सचित्र)**—संसार के बड़े-बड़े अभियानों का वर्णन। कीमत ढाई रुपये।

८. **समुद्र की लीला (सचित्र)**—समुद्र के बारे में आश्चर्य-जनक सच्ची जानकारी। कीमत ७५ नये पैसे।

९. असिधारा—राष्ट्रीय चरित्र निर्माण करने वाली ओज-पूर्ण कथाएं। कीमत तीन रुपये।

कविता

१. वसन्त के फूल (सचित्र, दुरंगी छपाई)—जीवन के शाश्वत सत्यों के सम्बन्ध में सरल, सुबोध, किन्तु उत्कृष्ट कवित्व की रुबाइयां। "जीवन के व्यापक कार्य-व्यापारों की अनुभूतियों से उनका हृदय इतना भरा हुआ है कि अभिव्यक्तियां बनकर अनुभूतियां छलक उठती हैं। और विराज उन्हें रुबाई समझकर कागज पर उतार लिया करते हैं।...सभी रुबाइयात अन्तर को छू कर निकली हैं।...कवि के हृदय में भावनाओं के अनन्त ज्वारभाटे उठ रहे हैं और भावधाराएं आपस में टकराती हैं और व्याकुल होकर बांध की सीमा तोड़कर फूट पड़ती हैं।"

—सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग

"चतुष्पद प्राण को छूने वाले हैं। बहती सरिता की भांति मुक्त, स्वतंत्र और आकर्षक ये चतुष्पद सुख के साथ-साथ अन्तर्दृष्टि भी प्रदान करते हैं। अनुभूति की गहराई और अभिव्यक्ति की तीव्रता उनमें है..."

—'जीवन-साहित्य' में श्री विष्णु प्रभाकर

बढ़िया कागज; कलापूर्ण छपाई; कीमत चार रुपये।

२. **हर की पैड़ी**—सरस शृंगारमय खंड काव्य। इसके सम्बन्ध में भारत के प्रसिद्ध पत्र 'माडर्न रिव्यू' की सम्मति पढ़िये :

"Standing on the Holy bank of the Ganges at Hardwar the poet watches the Caleidoscopic scene before him and is spell bound by its romance in its twin aspect by the varied beauty of Nature in the background and the colourful gaiety of humanity, particularly of womanfolk in the foreground. His word pictures have both vivacity and verisimilitude, while his description, 'love-effects' so to speak, has sanity as well as sensitiveness. There is something of the flow of Ganges in his style." *Modern Review (May 1954)*

कलापूर्ण तिरंगा मुखपृष्ठ; कीमत तीन रुपये।

३. **प्रेमदूती**—कविता संग्रह। कीमत ७५ नये पैसे।

४. **रतिविलाप**—मदन दहन की कथा को लेकर लिखा गया गीत नाट्य। कीमत डेढ़ रुपया।

छात्रोपयोगी साहित्य

१. **प्रामाणिक आलेखन और टिप्पण**—सरकारी कार्यालयों में होने वाले पत्र-व्यवहार की जानकारी देने वाली उत्कृष्ट पुस्तक। कीमत दो रुपये।

२. **प्रशासन शब्दावली**—सरकारी प्रशासन में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी-शब्दों के उपयुक्त और प्रामाणिक हिन्दी पर्याय-वाची शब्द। कीमत डेढ़ रुपया।

३. **हिन्दी कवियों का आलोचनात्मक अध्ययन**—प्रभाकर, तथा बी० ए० के स्तर की परीक्षाओं के लिए हिन्दी-कवियों की समालोचना। कीमत चार रुपये।

४. **निबन्ध-सागर**—हिन्दी में साहित्यिक, राजनीतिक, और सामाजिक विषयों पर निबन्धों की सबसे बड़ी और अच्छी पुस्तक। कीमत पांच रुपये।

५. **हिन्दी-साहित्य का सरल इतिहास**—कीमत एक रुपया।

६. **कवि-परिचय**—कीमत डेढ़ रुपया।

विविध

१. **सम्राट् विक्रमादित्य**—राजनीतिक नाटक। कीमत डेढ़ रुपया।

२. **गाय और बाघ**—बालोपयोगी रोचक कथा। कीमत ७५ नये पैसे।

३. **उदयन कथा**—बालोपयोगी अर्ध इतिहासिक कथा। कीमत ७५ नये पैसे।

४. **चाणक्य कथा**—बालोपयोगी अर्ध इतिहासिक कथा। कीमत ७५ नये पैसे।

५. **नया आलोक : नई छाया**—कहानी संग्रह। कीमत डेढ़ रुपया।

अनुवाद

१ **अभिज्ञान शाकुन्तल**—कीमत ३ रुपये

२. **कुमार सम्भव**—कीमत ३ रुपये

३. **मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय**—कीमत ३ रुपये